दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

ओ३म्

भामिनीभूषणकाव्यम्

महाकवि श्रीमदखिलानन्द प्रणीतम्

तत्प्रणीतेन

शीलसंवर्धनाभिधेन संस्कृतटिप्पणेन

तथा

विनयप्रदनाम्ना भाषातिलकेनापि च समेतम्

तस्येदं प्रथमसंस्करणम्

तच्च

मेरठनगरस्थे स्वामिमेशीनयन्त्रे ग्रन्थकर्त्रैव

मुद्रापयित्वा प्राकाश्यं नीतम्

स्वायत्तोस्य पुनर्मुद्रणाधिकारः

शालिवाहनशकः १८३२

विक्रमसंवत् १९६७

Publisher—P. Akhilanand Kavi
Chandranagar (Budaun)

Printer–P. Tulsi Ram Swami, Swami Machine Press Meerut.

प्रथमवारम् १०००] [मूल्यम् ४ आणकाः

ओ३म्

ग्रन्थावतरणिका

प्रिय वाचकवृन्द! यह तो प्रसिद्ध ही है कि आज कल के समय से प्राचीन समय में बहुत से कवि हुवे, परन्तु शोक इस बात का है कि उस समय में भी किसी ने स्त्रियों के उद्धारार्थ वैदिकशिक्षाप्रद कोई ग्रन्थ नहीं बनाया। आधुनिक पौराणिक कवियों में तो एक विषय वर्णन के अतिरिक्त ऐसी योग्यता ही नहीं, जो ऐसा ग्रन्थ बना सकें। श्रीहर्ष आदि कवियों ने जो कुछ काव्य बनाये उन में वैदिकधर्मविरुद्ध प्रायः [मद्यपान, जलक्रीडन, सुरतयोग, सर्वाङ्ग वर्णनआदि] हेय विषयों के अतिरिक्त और कुछ न लिखा, यदि लिखा भी तो कहीं २ पर कुछ २। अब कहिये इन काव्यों ने केवल एक विषय विस्तार के (जिन से बचना ही मनुष्य कर्त्तव्य है) भारतवर्ष में और क्या उपकार किया जो सराहनीय हो। कोई भी भद्र पुरुष क्या दावे से कह सकता है कि इन के देखने से मनुष्य श्रेष्ठ गुणवान् बन सकता है? कोई भी नहीं। इसी लिये बुद्धिमानों ने इन से जगत् का नाश देख केवल (काव्यालापांश्च वर्जयेत्) इतना ही शीर्षक लिख इन को तिलाञ्जलि देदी। वास्तव में सुकुमारतर विनेय पुरुषों के हृदयों में सरल एवं सुगम प्रकार से कुशाग्रमतिवेद्य लोकोत्तर विचारगम्य वैदिकसिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये प्राक्तन समय के ऋषि मुनि महर्षियों ने इस मार्ग को बनाया था, जिस का परिणाम भी यह हुवा कि भारतवर्ष के प्रसिद्ध सम्राट् महाराजा दशरथ के प्रधान पुत्र सूर्यवंशप्रदीप धर्मधुरन्धर, वैदिकसिद्धान्तप्रवर्त्तक, सर्वलोकमान्य, त्रिजगज्जनवन्दित, मर्यादा-पुरुषोत्तम, श्री १०८ रामचन्द्र जी महाराज अपने कुलगुरु वशिष्ठ जी के द्वारा वाल्मीकिविरचित अपने वंश का इतिहास सुन अपने आप छोटी अवस्था में भी निजकर्त्तव्यपरायण हुवे। इसी लिये काव्यप्रकाश के आरम्भ में मम्मटाचार्य ने-

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ १ ॥

इस भरतमुनिप्रणीत कारिका का विवरण करते हुवे काव्य के द्वारा ही संसार में यश, धर्मव्यवहार, ज्ञान, दुरितनिवारण आदि फल बतलाते हुवे अन्त में परानन्द प्राप्ति तक भी बतलाया। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने तो-

चतुर्वर्गफलप्राप्तिसुखादल्पधियामपि ।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते ॥ २ ॥

इस पद्य का ग्रन्थारम्भ में ही व्याख्यान करते हुवे प्रतिज्ञापूर्वक धर्मार्थ कामभोक्षावाप्ति काव्य द्वारा ही अग्रिम पद्य के भाष्य द्वारा बतलादी। विचारदृष्टि से यदि देखा जावे तो जितना गौरव सत्काव्यों के लिये पाया जाता है, उतना अन्य ग्रन्थों के लिये नहीं। ईश्वरीयज्ञानभूत, सदसद्विवेचक कर्मोपासनाज्ञानस्कन्ध, वेदभगवान् के सर्वोत्तम छन्दोबद्ध काव्य होने से प्रमाणान्तरापेक्षा इस विषय में नहीं। परम्परया वेदों के कण्ठस्थ रखने में छन्दोबद्धता ही अनन्य कारण समझा जाता है। सब से प्रथम ग्रन्थ बनाने की जो शैली थी वह काव्यरूप ही थी। तदुत्तरकाल में सूत्र एवं भाष्य बनाने की प्रथा प्रचलित हुई, कहां तक कहा जाय—

कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः

इस यजुर्वेद के मन्त्र में ईश्वर के लिये भी [कवि] शब्द का विशेषणरूप से प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों में भी जो कि अध्यात्मविद्या का अगाध समुद्र हैं, प्रायः छन्दोबद्धता ही महर्षियों ने अनुसृत की, जिस से श्लोक रूप से कण्ठस्थ करने की किसी प्रकार बाधा न आपड़े। प्रचलित काव्यों में सब से प्रथम आदि कवि वाल्मीकि के निबन्ध का भी करुणरसप्रधान जो प्रथमोद्गार निकला था, वह भी छन्दोबद्ध ही निकला और भी इसी प्रकार बहुत से उदाहरण तत्र २ पाये जाते हैं॥

स्वभावसुकुमार सरसतर स्त्रियों के हृदयों में जितना शीघ्र काव्यों के द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार हो सकता है उतना औरों से नहीं, क्योंकि काव्यों में एक रस भरी शक्ति ऐसी होती है जो स्वभावतः अन्तःकरणों को मोहित कर लेती है। तत्रापि स्त्रियों के अन्तःकरणों को जो कि निसर्गमृदुल एवं करुणारुण होते हैं। पर यदि कोई काव्य उन के लिये जगत् में विद्यमान ही न हो तो वह क्या देखें? इस अभाव को सामान्यतया जगन्मात्र में विशेषतः आर्यसमाज में दूर करने के लिये जो परिश्रम मैंने किया, वह ईश्वर की कृपा से अनेक ग्रन्थों में परिणत होकर आज सज्जनों के सम्मुख आता है। यदि इस मेरे असाधारण परिश्रम को धर्मानुरागी उदारजन शीघ्र ही भारत में प्रसृत करने को प्रयास करें तो इस से अधिक मेरे लिये क्या आनन्द होगा?

अन्त में उस करुणावरुणालय परमेश्वर के लिये मैं धन्यवाद देता हूं जिस की असीम कृपा से मैंने ऋषि दयानन्द के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये यह अवसर पाया और अपनी सच्ची भक्ति का नमूना भी दिखाया। हे दयामय! हे दीनबन्धो! हे करुणासिन्धो! आप मेरे लिये उस ज्ञान का प्रकाश रूप प्रसाद दें, जिस के आप अधिपति हैं ताकि मैं इस से भी अधिक संसार लिये उपकार कर सकूं। इति॥

श्रीमतामणुशरणरेणुः

अखिलानन्दशर्मा

कविरत्नम्

विषयानुक्रमः

प्रथम सर्ग में—मङ्गलाचरण, ईश्वरस्तुति, काव्यसुन्दरता, सत्काव्य लक्षण, स्त्रीप्रशंसा, स्त्रीगुणवर्णन, स्त्रियों की प्रधानता, उन के गुणवती होने में सन्तान का गुणवान् होना, मन्द होने में मन्द होना, इस लिये उन के सुधार की आवश्यकता, इस काव्य के निर्माण का प्रयोजन आदि विषय हैं ॥

दूसरे में—वेद मन्त्रों से ब्रह्मचर्याधिकार, चरक से उस की पुष्टि, वेदाध्ययन का अधिकार, पाणिनि के मत से अङ्ग पठनाधिकार आदि विषय हैं ॥

तृतीय में—गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, अपला, अरुन्धती, सुकलत्रा, सरस्वती, लक्ष्मी, शान्ति, गौरी, जानकी, दमयन्ती आदि का वर्णन है ॥

चौथे में-प्राचीन समय का दृश्य और जगत् में ऋषि दयानन्द का आना ॥

पञ्चम में—कन्या का जन्म, पालन, पढ़ाना, गुरुकुल भेजना, वहां की समस्त बातों का बताना, वहां से लौटकर कब गृह में आना आदि विषय हैं ॥

छठे में—विवाह का समय निश्चय, वर का ढूंढना, वैदिक विवाह का क्रम, दूर देश के विवाह में सुख और उस की पुष्टि में प्रमाण आदि विषय हैं ॥

सप्तम में—स्वयं कन्या और वर का वैदिक विवाह करना बताना ॥

आठवें में—विवाह के अनन्तर पुत्री के प्रति पिता का ख़ास उपदेश देना ॥

नवम में—मुख, कण्ठ, नेत्र, श्रवण, शिर, हृदय, हस्त, पाद, मन और समस्त अङ्गों का, क्या भूषण होना चाहिये ? यह सविस्तर बताया गया है ॥

दशम में—पति के गृह में आकर किस प्रकार रहना, क्या करना, किस तरह व्यवहार वर्त्तना, सन्तान उत्पन्न करना आदि विषय वर्णित हैं ॥

ग्यारहवें में—२४ चौबीस घण्टे का दिन रात किस तरह, किस २ कार्य में कितना २ विताना आदि बताकर ईश्वरार्पण और ग्रन्थ समाप्ति हैं ॥

ओ३म्

—(अथ)—

महाकविश्रीमदखिलानन्दप्रणीतं सतिलकम्

भामिनीभूषणकाव्यम्

प्रारभ्यते

श्रीमत्यै नमनं विधाय नितरां मात्रे सुबुद्ध्यै रसा-
ल्लोकान्तर्गतयोषितामहरहो दीनां प्रपश्यन्दशाम्।
तासामुद्धरणैककर्मनिरतस्वान्तेन शान्तात्मना
सच्छिक्षाविषयात्मकं गुणवशात्काव्यं मया तन्यते ॥१॥

तत्रेश्वरो वितरताद्भगवानऽवर्य्यं
साहाय्यमुत्तमतया विरचय्य येन।
यायामहं सफलतामितरैरगम्यां
लोकोपकारविषये गुणगौरवेण॥ २॥

श्रीमती सुबुद्धि नामक निज माताको प्रणाम कर भारतवर्षान्तर्गत स्त्रियोंकी प्रतिदिन दीनदशा देख उन के उद्धारार्थ वैदिकशिक्षाप्रद इस काव्य को शान्त चित्त से मैं बनाता हूं, उस में भगवान् ईश्वर मुझ को पूर्ण बल दें जिस से इस नवीन कार्य में सफलता प्राप्त हो। विना भगवान् की सहायता के इतना बड़ा कार्य कदापि पूर्णता को प्राप्त न हो सकेगा ॥ १-२ ॥

कुत्रायं नवकाव्यनिर्मितिमहः कन्योपकारी कलौ
विश्वानन्दविवर्धनः क्व कविराडेवंविधोभूतले।
मन्ये सज्जनगौरवोदयमुखो देवोऽमरोनिर्जरः
सर्वं कारणजातमीदृशमहो संयोजयत्यादरात् ॥३॥

---

१ धीर्धारणावती मेधेति कोषाद्बुद्धिरेव सकलार्थप्रदेति तत्र भगवान्वेदोपि यांमेधामिति मन्त्रमुखेनाहातस्तन्नमनंश्लेषमुखेन प्रारब्धम् ॥

नैतादृशं जगति केनचिदत्र काव्यं
योषोपकारमनसा रचितं पुरस्तात् ।
अन्योऽपि नैव रचयिष्यति कोऽपि मन्ये
विज्ञा मनःसु तदिदं परिशीलयन्तु ॥४॥

इस कलियुग में स्त्रियोंके लिये वैदिकशिक्षाप्रद कहां यह काव्य निबन्ध, कहां फिर उसके सम्पादक "कविरत्न" यह दोनों बातें केवल परमेश्वर ने ही इस समय एकत्र करदीं, वास्तव में केवल स्त्रियों के हितार्थ ऐसा ग्रन्थ न किसी प्राचीन कवि ने बनाया और न कोई बनायेगा । इस बात को विद्वान् ही अपने २ हृदयों में विचारलें ॥ ३–४ ॥

किं तादृक्कवनेन यत्समुदयाद्धर्मः क्षयं प्राप्नुया-
देतादृग्विषयेण[2] किं यदुदयाच्छृङ्गारआविर्भवेत् ।
काव्यन्तरसमुदीरयन्ति[3] कवयो यस्योदयाद्भूतले
वेदोदीरितधर्मवृद्धिरनघा सर्वत्र सम्यग्भवेत् ॥५॥

एतत्समस्तमपि चेतसि संविचार्य
पूर्वं विधाय नमनं परतः शिवाय ॥
यद्वर्ण्यते सकलविश्वहितानुचेष्टं
सर्वेऽपि तत्सुमनसः परिवीक्षयन्तु॥६॥

जिन काव्यों से जगत् में धर्म नष्ट हों उन से क्या फल ? जिन के विस्तार से शृङ्गार फैले, ऐसे विषयों से क्या ? काव्य वही प्रशंसनीय माना जाता है जिस के बन जाने से वैदिकधर्म की सर्वत्र वृद्धि हो । यह समस्त मन में विचार ईश्वर की वन्दना करता हुआ मैं जो कुछ वर्णन करता हूं, समस्त विद्वान् उस को देखें ॥ ५–६ ॥

धन्याः स्त्रियः सकलसर्गनिदानभूता
यासां चरित्रममलं जगतां त्रयेऽपि ।

---

१ शृङ्गारतिलक, पुष्पबाणविलाससदृशेन । २ स्त्रीसर्वाङ्गवर्णन, पानगोष्ठी, वनविहारादिना । ३ रामायणसदृशम् ॥

विस्तीर्णमस्ति कविरत्नशतैरवर्ण्यं
सृष्टिस्थितिप्रलयकारणवत्प्रभावात् ॥७॥
यासां वशेन जगतां प्रभवन्ति सर्वे
ते ते विहारवसनाशनपानभावाः ।
यासां किमन्यदधिकं कथयामि नूनं
प्राशस्त्यमत्र विषये विदितं यतस्तत् ॥८॥

सकल सृष्टि के कारणरूप स्त्रियों को धन्यवाद है, त्रिजगद्विस्तृत जिनका चरित्र सृष्टि स्थिति प्रलयों के निदानभूत होने से अनेक कविरत्नों द्वारा भी अवर्णनीय है, जिनके वशसे संसार के समस्त भोजनादि व्यवहार सिद्ध होते हैं उन के लिये कहां तक मैं अधिक प्रशंसा लिखूं, स्वयंलोक में विख्यात है ॥७-८॥

सर्वेपि तासु निवसन्ति षडेव हित्वा
दोषान्गुणाद्विगुणतामुपगम्य रागात् ।
भव्यं विलोक्य भवनं भुवने न कस्य
चेतोजनस्य रमतेऽगुणिनं विहाय ॥ ९ ॥
ताएव सृष्टिविषये विधिना नियुक्ताः
प्राधान्यतोऽनुमतमेतदलं ममापि ।
नोचेत्कथं मनुजमात्रमनोनिसर्गा-
त्तासु प्रविश्य रमते बहुधा बुधानाम् ॥ १० ॥

नीति शास्त्र में कहे हुए छः दोषों को छोड़ और सब उन में गुण ही गुण रहते हैं, ठीक भी है। सुन्दर गृह को देख किस का चित्त रहने को नहीं चाहता, विधाता ने स्वभाव से जगत् में इन स्त्रियों को ही प्रधान बनाया, यह मैं भी मानता हूं, नहीं तो पुरुषमात्र का मन उन में ही क्यों लगता। बहुधा करके पण्डितों का, जो कि विचारशील होते हैं ॥ १० ॥

देवोपि सृष्टिविषयात्पुरतः स्वदेह-
मर्द्धं विधाय पुरुषोऽभवदर्धकेन ।

नारी तदासृजदरं पुरुषं विराजं
नास्तीह कुत्र विषयेऽनुमता सुत्रामा ॥ ११ ॥
ताएव चेद्गुणगणानुगता भवेयु-
र्नार्यीत्र भूमिवलये तदहो सुतानाम् ।
शिक्षासमस्तविषयानुगता सुखं स्यात्
मातैव साधयति सर्वसुताब्धिसर्गात् ॥ १२ ॥

सृष्टि से पहिले ईश्वर भी एकांश से प्रकृतिरूप स्त्री तथा एकांश से स्वयं पुरुषरूप कल्पना नहीं करता, तब तक विराट्रूप को नहीं प्राप्त होता। इस लिये किस समय में स्त्री का आदर नहीं है? यदि वे ही स्त्रियें जगत् में गुणवती हों तो वास्तव में पुत्रों की समस्त शिक्षा अनायास से हो जावें, क्योंकि माता ही समस्त पुत्रों को बनाया करती है, यह स्वभावसिद्ध है ॥११-१२॥

यत्प्रेम मातुरनुगच्छति पुत्रजातं
तन्नो पितुर्विदितमेतदलं पृथिव्याम् ।
शास्त्रेपि तातपदतोजननी प्रशस्ता
धर्मानुवर्णनपरे मनुनाऽतिरागात् ॥ १३ ॥
कस्मान्न तत्र भवतात्स्वसुतेऽनुरागो
मातुर्यया जठरमध्यगतोतियत्नात् ।
संधारितः पुनरलं परिवर्द्धितोपि
बाल्ये समस्तविपदामधिगतय भावम् ॥ १४ ॥

स्वभाव से जो प्रेम पुत्रों के ऊपर माता का होता है वह पिता का नहीं होता, यह प्रत्यक्ष है, इसी लिये मनु ने भी पिता से सहस्र गुण अधिक माता को माना है। क्योंकर उन पुत्रों के ऊपर माता का प्रेम न हो जिन को दश मास उदर में रख, अनन्तर बचपन में अनेक कष्टों को झेल यथाशक्ति परिवर्धित भी किया हो ॥ १३-१४ ॥

तस्मादनुव्रजति बालकजातमत्र
तां मातरं गुणवती यदि सा तदा तु ।
संबोधयत्यनुपदं निगमोक्तमार्गं
यस्माज्जगत्यनुदिनं सुखमेति पुत्रः ॥ १५ ॥
मूढा भवेद्यदि तदा जननी सुतानाम्
मौढ्यं कथं भवतु नोऽगुणवत्प्रसङ्गात् ।
आवश्यकं तदिह भाति निदानशुद्धौ
कार्यं स्वतोव्रजति शुद्धिमिदं प्रसिद्धम् ॥ १६ ॥

इसी लिये माता की तरफ़ पुत्रों की रुचि अधिक हुआ करती है यदि वह गुणवती हो तब तो हर समय वैदिकशिक्षा देसकती है, जिस से सर्वदा पुत्र सुखी हो, यदि मूर्ख हो तो स्वयं ही पुत्र मूर्ख रहेंगे। इस लिये स्त्रियों का सुधार आवश्यक है। क्योंकि कारण के शुद्ध होने पर कार्य स्वयं शुद्ध होता है ॥ १५-१६ ॥

सर्वं विहाय मनुजैरिदमेव कार्यं
कार्यं ततोयदुदयाज्जगतीतलेस्मिन् ।
स्वाराज्यसिद्धिरमला विमलाशयानां
हस्ते धृतामलकवत्पुनराप्य तिष्ठेत् ॥ १७ ॥
यावत्सुतापठनपाठनतत्परत्वं
लोकेषु विस्तृतिमुपेत्य गृहेषु नैव ।
वृद्धिं गमिष्यति न तावदमुत्र मन्ये
सौख्यं भविष्यति भविष्यति हानिरेव ॥ १८ ॥

इस लिये सब कामों को छोड़ पहिले यही काम करना चाहिये जिस के होने से जगत् में हस्तामलकसमान, स्वाराज्य सिद्धि फिर अपनी होजावे, जब तक स्त्रीशिक्षा जगत में नहीं फैलेगी तब तक कदापि सुख न होगा, बल्कि हानि ही हानि होती रहेगी ॥ १७-१८ ॥

तस्मात्प्रयत्नशतमत्र विधाय सर्वै-
रार्यैरनार्यपदवीमदवीयसीन्ताम् ।
नीचैर्विधाय समयानुगतां स्वशक्त्या
योषानुशिक्षणविधौ क्रियतां प्रयत्नः ॥ १९ ॥

हानिस्तु नेत्रविषयं तदभावतोऽत्रा-
यातैव सर्वभुवनेषु महान्धकारः ।
नानामतानुगमनं च नवीनयूना-
मन्यच्च यत्सकलमस्ति तदंशभूतम् ॥ २० ॥

विश्वे गुणास्तु निगमोदितधर्मशिक्षा
विद्योदयोन्नतिपरोपकृतिप्रधानाः ।
शिक्षावशादनुदिनं सुदृशोः पुरस्ता-
द्रेष्यन्ति कालमधिगत्य क्रमरयपूर्वम् ॥ २१ ॥

इस लिये सैंकड़ों यत्नों से कालक्रमागत अनार्य पदवी को नीचे दबाकर आर्यों को स्त्रीशिक्षा में ध्यान देना चाहिये, इस के न होने से जो कुछ हानियां होती हैं वह तो प्रत्यक्ष ही हैं। जो कि नाना मतों का फैलना, अन्धेर मचना आदि हैं। परन्तु कुछ काल के अनन्तर विद्या वृद्ध्यादि इस के फल भी दृष्टि गोचर होंगे ॥ १९-२१ ॥

यद्बीजमत्र दयया मुनिना समुप्तं
लोकोन्नतौ निजशरीरमपि प्रदाय ।
तद्बीजमङ्कुरितमाशिरभूदिदानीं
श्रीवर्तमानकविरत्नमिषेण दैवात् ॥ २२ ॥

सिञ्चन्तु सभ्यपुरुषाश्चपलं तदेत-
द्येन द्विपत्रितपदं समवाप्य हर्षात् ।
कालेन केनचिदुदारफलोन्नतेन
सत्पत्रपुष्पफलतामपि संश्रयेत ॥ २३ ॥

स्त्रीशिक्षा का जो बीज शरीर तक देकर एक महात्मा ने बोया था, वह आज कविरत्नरूप से अङ्कुरित हुवा है । सभ्यगण सहायरूप जल से इस का शीघ्र सिञ्चन करें, जिस से यह थोड़े ही समय में पल्लवित, पुष्पित तथा फलित हो ॥ २२-२३ ॥

नहि जगतामुपकारो भविता शिक्षां विहाय बालानाम् ।
इति मत्वा नवकाव्यं मयेदमस्मिन्विनिर्मितं लोके ॥ २४ ॥
आलोकयन्तु कन्याःसाध्व्यश्चित्तेषु भावयन्त्वनिशम् ।
केवलतदेकशिक्षं नितरामेतत्सुकाव्यनवरत्नम् ॥ २५ ॥

विना स्त्रीशिक्षा के जगत् का सुधार होना असम्भव है, इस लिये यह ग्रन्थ स्त्रियों के लिये मैंने बनाया, इस को पुत्रियां पढ़ें, बहिने देखें, माताएं विचारें, जिस से मेरा परिश्रम सफल हो ॥ २४-२५ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
नारीशिक्षावश्यकतावर्णनं
नाम प्रथमः सर्गः

द्वितीयः सर्गः

अविशेषेण पुत्राणां पुत्रीणां च समुद्भतेः ।
कृतेरपि समानत्वमनुमेयमवस्थितेः ॥ १ ॥
ब्रह्मचर्येण कन्यापि युवानं विन्दते पतिम् ।
इति मन्त्रेण वेदोपि निदर्शयति वर्णिताम् ॥ २ ॥
षोडशाब्दाऽवधि मतं चरके सुश्रुतेपि तत् ।
मुनिना वर्णिभावत्वं समत्वागतवीर्यवत् ॥ ३ ॥
वेदानुकूलकृत्यानां पृष्ठतो गमनादिह ।
मन्वादिधर्मशास्त्राणां प्रामाण्यमधिगम्यते ॥ ४ ॥
अतस्तेषु सुताशिक्षा नास्ति चेत्तर्हि दूषणम् ।
वर्तते यदि सा नूनं नितरां तर्हि भूषणम् ॥ ५ ॥

पुत्र एवं पुत्रियों के समानप्रसव होने से कार्य में भी समानता माननी योग्य है [ब्रह्मचर्येण कन्या०] इस मन्त्र के द्वारा वेद कन्याओं के लिये ब्रह्मचर्य बतला रहा है, सोलह वर्ष की अवस्था तक गर्भाधान के निषेधमुख से चरक एवं सुश्रुत के मत में भी कन्याओं का ब्रह्मचर्य विहित है । मन्वादि धर्मशास्त्रों का वेदानुकूल होने से प्रमाण माना जाता है । इस लिये यदि उन में कन्याओं का व्रतबन्धन नहीं लिखा हो तो उन का दोष है, यदि लिख दिया हो तो उन का भूषण है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

ब्रह्मशब्देन वेदस्य दर्शनात्पाणिनेः कृतौ ।
तदध्ययनवत्कालो ब्रह्मचर्यमिति स्मृतः ॥ ६ ॥
जितेन्द्रियतया यत्तु ब्रह्मचर्यमवस्थितम् ।
गृहस्थेपि समन्वेति धर्माचरणदर्शनात् ॥ ७ ॥
परमाश्रमधर्मेण यदुल्लिखितमागमे ।
तदेव किल वर्णित्वं प्रशस्तमुपदिश्यते ॥ ८ ॥

ये केचिदत्र विषये विशङ्कन्ते नरा वराः ।
सुखं ते वेदमन्त्रार्थं भावयन्तु प्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥
स्वतःप्रमाणतामाप्ते वेदमन्त्रे पुरःस्थिते ।
का नाम हृदये शङ्का परिस्थास्यति वादिनाम् ॥ १० ॥

पाणिनीयाष्टक के [चरणेब्रह्मचारिणि] सूत्र में ब्रह्म शब्द से वेद का ग्रहण किया है, उस के पठनार्थ जितना समय अपेक्षित हो, वह भी उपलक्षण से ब्रह्म माना जाता है, वह दोनों के लिये बराबर है। जितेन्द्रियतात्मक जो ब्रह्मचर्य है वह तो गृहस्थों में भी बन सकता है, परन्तु प्रसिद्ध वह ही ब्रह्मचर्य है जो व्रतबन्धरूप हो। जो कोई इस विषय में शङ्का रखते हों वह वेदमन्त्र का अपने हृदय में विचार करें। जब स्वतः प्रमाण वेदमन्त्र ही इस विषय में प्रमाण हों तो कौन सी शङ्का इस विषय में और रहेगी? ॥९-१०॥

यथेमामिति सन्मन्त्रे जनेभ्य इति दर्शनात् ।
प्रादुर्भावार्थकत्वेन धातोः सर्वत्र सङ्गतिः ॥ ११ ॥
जननार्थमुपक्रम्य यदि मन्त्रपदस्थितिः ।
तदापि सिद्ध एवार्थः समानजननाद्ध्रुवम् ॥ १२ ॥
यथा प्रादुर्भवन्तीमे तनयास्तद्वदेव ताः ।
सुता अपि विशेषोऽत्र नास्ति कोपि विलोक्यताम् ॥ १३ ॥
यथा विधानमायाति नेत्रयोः पुरतोऽधुना ।
न तथा वारणं वेदे ब्रह्मचर्यादिकर्मसु ॥ १४ ॥
यथेश्वरो वेदजातं पुरुषान्प्रति भाषते ।
तथैव तनयाभ्योपि समानप्रसवत्वतः ॥ १५ ॥

"यथेमां वाचं" इस मन्त्र के 'जनेभ्यः' पद में यदि धातु का अर्थ प्रादुर्भाव लें तब तो प्रादुर्भूतार्थमात्र में धात्वर्थ की सङ्गति लगती है, यदि धात्वर्थ न माना जावे तब भी तुल्य जन न होने से दोनों स्त्री पुरुषों को वेदाधिकार है। जिस प्रकार पुत्र उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार पुत्रियां भी, इस

में कोई विशेष नहीं। जिस प्रकार ब्रह्मचर्यादि विषयों में पुत्रियों के लिये विधान पाया जाता है, उस प्रकार निषेध नहीं पाया जाता, जिस प्रकार ईश्वर पुरुषों के प्रति वेदोपदेश करते हैं वैसेही स्त्रियों के प्रति भी॥ ११-१५॥

पतञ्जलिकृते भाष्ये पस्पशान्हिकवर्णने।
वेदाध्ययनतः पूर्वमङ्गानां पठनं मतम्॥ १६॥
वास्तवे युक्तमेतत्तु लिखितं तत्र दृश्यते।
ममाप्यनुभवे पूर्वं वेदाङ्गपठनं वरम्॥ १७॥
एतावता समूहेन वचसां स्वयमागतम्।
शिक्षाकल्पादिभेदानां हृदयेष्ववधारणम्॥ १८॥
उपाध्यायाऽप्युपाध्यायी स्वयंव्याख्यानदर्शनात्।
मुनिना वर्णिता हर्षाद्वार्तिके कक्ष्यतां स्वयम्॥ १९॥
यदारभ्य क्रमस्यास्य परिवर्तनमादृतम्।
तदारभ्य महावेगाद्दोषैरपि कृतं पदम्॥ २०॥

पतञ्जलिकृत महाभाष्य के पहिले आन्हिक में पूर्वकल्प का दृष्टान्त देकर बतलाया है कि यज्ञोपवीतोत्तरवेदाध्ययन से पहिले वेदाङ्ग पढ़ना चाहिये वास्तव में मेरे मत में भी यह ठीक प्रतीत होता है। इतने कथन से य आशय निकला कि स्त्रियों को भी वेदाङ्ग पढ़ना चाहिये। वार्त्तिकक कात्यायन भी स्वयं व्याख्यान देने वाली स्त्रियों को [उपाध्याया] कहते हु पूर्णरूप से स्त्रियों के लिये वेद एवं वेदाङ्गों का अधिकार बतलाते हैं। जब इस क्रम का परिवर्त्तन हो गया तभी से नाना प्रकार के दोषों ने भी इ भारतवर्ष को अपना स्थल बनाया॥ १६-२०॥

पूर्वं त्वयमलं शोकस्तदारभ्य समुत्थितः।
भुवि वेदमतं हित्वा नानामतचयोऽभवत्॥ २१॥
विद्याधनसुखादीनां विनाशोपि यथाक्रमम्।
तदारभ्य पदं धत्ते भारते नात्र संशयः॥ २२॥

अतोऽधुना सर्वजनैः सुतानां यथायथं पूर्ववदेव कर्तुम् ।
समस्तदेशं परिपालनीयो विवर्धनीयश्च तथा प्रचारः ॥२३॥

कारुण्यमत्र विषये परमेश्वरोऽपि
साहाय्यदानपरकं प्रतनोतु येन ।
दुर्भिक्षराजभयरोगवियोगशोकाः
नाशं प्रयान्तु सकलादपि विश्वभागात् ॥ २४ ॥

किमन्यदस्मात्परमस्ति वाच्यं
किमन्यदस्मात्परमस्ति याच्यम् ।
किमन्यदस्मात्परमस्ति लेख्यं
यथा मतिस्ते कुरु देव देव ॥ २५ ॥

सब से पहले तो यही शोक है कि वैदिकमत छोड़ नाना मतों का प्रचार हुवा । दूसरा विद्यादि सुखों का भी तभी से तिरोभाव होने लगा। इस लिये समस्त जन पहिली सी इस देश की दशा बनाने के लिये फिर स्त्रीशिक्षा का आरम्भ करें । परमात्मा भी इस विषय में सहाय दे, जिस से दुर्भिक्षादि सब भय समस्त भूमण्डल से भाग जावें, इस से अधिक क्या कहना है, क्या लिखना है, क्या मांगना है । हे परमात्मन् ! जैसी रुचि हो वैसा कीजिये, आप सब कुछ करने को समर्थ हैं ॥ २१–२५ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ सतिलके
भामिनीभूषणकाव्ये
सुताविषयकवैदिकशिक्षाधिकारवर्णनं नाम
द्वितीयः सर्गः

—*—

तृतीयः सर्गः

अतःपरं पूर्वपरिश्रुताःसुताः प्रशस्तशिक्षाविभवैरलंकृताः ।
नवीनबालाविनयैकहेतवे विवर्णयाम्यत्र विलोक्यतां बुधैः ॥१॥
पुरा बभूवेश्वरतत्परा सती गुणेन गार्गी विनयेन च श्रुता ।
जगत्त्रये गर्गकुलं जवाद्यया विभूषितं ख्यापितमप्यसंशयम् ॥२

पूर्वकाल में जो २ देवियां प्रशस्त तथा सुशिक्षित हुईं उन का कुछ वृत्तान्त नवीन स्त्रियों के लिये यहां पर लिखता हूं। विशेष संस्कृत (आर्यसुताशिक्षा सागर) में देखिये जो कि अलग छपा है। विद्या एवं विनय से युक्त परमात्मनिष्ठ नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी पहिले एक गार्गी हुई, जिस ने वंश को सब से ऊंचा बना दिया ॥ १-२ ॥

तदैव [1]मैत्रेय्यपि लोकविश्रुता बभूव काले परमर्षिवन्दिता ।
तिरस्कृतं वैषयिकं यया सुखं निजेन विद्याविभवेन यौवने॥३
उभे अपीमे सुसुते सुशिक्षिते महामुनीनामपि मानभञ्जिके ।
बभूवतुर्ब्रह्मपदोपशोभिते समस्तभावेन महत्त्वमापतुः ॥ ४ ॥

अपने विचार से जिस ने यौवन में भी विषयपराङ्मुखता स्वीकार की वह लोकविश्रुत मैत्रेयी भी उसी समय हुई । यह दोनों देवियां ब्रह्मवेत्री मुनियों का भी मान गिराने वाली समस्त व्यवहारों में कुशल तथा वैदिक मार्गप्रचारिणी हुईं ॥ ३ ४ ॥

मुनेरगस्त्यस्य परातिविश्रुता तदा बभूवातिकला सधर्मिणी ।
ययात्त्रृचामप्यनुवाकसूक्तिकाद्वितीयमन्त्रोपरिभाष्यमाहितम्
न विश्रुता किं चपला पला पुरा समस्तवेदाङ्गपटीयसी सती ।
समस्तविद्वन्मुनिकन्यकाजनाऽनपाठयद्या बहुदर्शनादिकम् ६

---

[1] मैत्रेयी कात्यायनी चोभे याज्ञवल्क्यधर्मपत्न्यौ ॥

जिस ने ऋग्वेद के मण्डल १५,२२अनुवाक, १७९ सूक्त, १ मन्त्र २ रे के ऊपर भाष्य किया वह ऋषि अगस्त्य की धर्मपत्नी लोपामुद्रा भी उसी समय हुई। " कन्या गुरुकुल " में अनेक मुनियों की पुत्रियों को जो दर्शन आदि ग्रन्थ पढ़ाती थीं, वह वेदवेदाङ्गवेत्री श्रीमती अपला देवी भी उसी समय में हुई ॥५-६॥

अरुन्धती सापि वशिष्ठसन्मुने-
र्बभूव पत्नी मिथिलेशदारिका ।
यदीयपादाम्बुजपूजनादयौ
सतीषु सर्वाग्रपदं भुवस्तले ॥ ७ ॥

अतः परं का पदवी विभाव्यतां
विवाहकालेपि वधूजनैर्ध्रुवम् ।
विलोक्यते यच्छुभनामतारका
विधेर्विधानादिव खं समाश्रिता ॥ ८ ॥

जिस के चरणारविन्दपूजन से जनकनन्दनी समस्त पतिव्रताओं में अग्रगण्य हुई, वह वशिष्ठ की धर्मपत्नी अरुन्धती भी पूर्व समय में हुई, इस से अधिक प्रतिष्ठा क्या होगी, जिस के नाम की ईश्वराज्ञा से आकाश में विद्यमान तारा विवाह के समय समस्त स्त्रियों को सादर देखना पड़ता है ॥७-८॥

सुकल्पना सा च्यवनस्य भामिनी
पुरा महर्षेरभवज्जनस्तुता ।
यया पुरस्तादपरा न रक्षिता
निजस्य नाम्नः समये पुरः स्थिते ॥ ९ ॥

सरस्वती सर्वबुधैरभिष्टुता
न विश्रुता किं जगतीतलेऽधुना ।
यया स्वपत्युर्विधिवादखण्डने
कृतोविवादः स्वयमेव शङ्करैः[1] ॥ १० ॥

---

१ शङ्कराचार्यैः सममिति शेषः, महत्वाद् बहुवचनप्रयोगः ॥

जिस ने अपने समय में अपने समक्ष दूसरी को नहीं गिना वह च्यवन ऋषि की धर्मपत्नी सुकन्यना भी प्राचीन समय में इसी भारत में थी। अपने पति मण्डन मिश्र के हारने पर जिसने स्वयं शङ्कर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ किया वह बुधजनवन्दिता श्रीमतीसरस्वतीदेवी क्या आप ने नहीं सुनी? ॥९-१०॥

मिताक्षरायास्तिलकं यया कृतं
निजेन विद्याविभवेन किं न सा।
प्रसिद्धिमाप्ता गुणिनाङ्गणे स्वयं
प्रशस्तलक्ष्मीति मनोहराभिधा ॥ ११ ॥
मुनीश्वराणां समये भुवस्तलं
विभूषितं याभिरुदारकर्मभिः।
विविच्य ताः सम्प्रति वर्ण्यते मया
महीश्वराणां गृहिणीप्रशंसनम् ॥ १२ ॥

अपने विद्याबल से जिस ने मिताक्षरा के ऊपर एक तिलक बनाया था वह भी गुणियों में प्रशंसित लक्ष्मीदेवी पूर्व समय में हुई। यह देवियां मुनियों के समय की मैंने बतलाईं। अब कुछ राजाओं की धर्मपत्नियां मैं बतलाता हूं जो प्रसिद्ध हुईं ॥ ११-१२ ॥

हिमाधिवासस्य महामहीपते-
रुमा किमासीन्न शिवाभिलाषिणी।
वनङ्गता या महते महोदया-
त्समं सखीभ्यां तपसे तपोधना ॥ १३ ॥
नलस्य लोकत्रयगीतसद्यशो-
धनस्य धन्या महिषी जनस्तुता।
न धीमतीनां श्रुतिगोचरङ्गता
सरस्वती यां करपीडनेऽन्वगात् ॥ १४ ॥

जया और विजया के साथ जिस ने वन में जाकर बड़ा भारी तप किया था, वह हिमालय राजा की पुत्री उमा पूर्व समय में हुई। जिस के विवाह समय में स्वयं सरस्वती ने आकर वरों का वर्णन करना प्रारम्भ किया था, वह दमयन्ती क्या कर्णगोचर न हुई? ॥ १३-१४ ॥

विदेहतां यो विषयेष्वनादरा-
त्सदेह एवानुजगाम भूपतिः।
प्रसिद्धकीर्तेर्जनकस्य तस्य किं
सुता न लोकेऽनुमतास्ति जानकी ॥ १५ ॥
अशेषविद्याधरराजदारिका
विशेषविद्याधरबाणवाक्पथम्।
समागता सापि कथं न वीक्ष्यते
सुखेन लोके भवतीभिरादरात् ॥ १६ ॥

विषयों में अप्रसक्ति होने से सदेह भी जो विदेह पदवी को प्राप्त हुए, उन जनक की पुत्री जानकी तो संसार में प्रसिद्ध ही है। गन्धर्वराजकुमारी कविवर बाणभट्ट के लिखने योग्य पूर्ण विदुषी कादम्बरी भी आज कल के विद्वानों के वर्णन से बची नहीं है ॥ १५-१६ ॥

समस्तवेदान्तविचारवर्धना
कथंचिदुत्कृष्टपथेन याप्यते।
सहोदरी सा मम शीलशालिनी
मनुष्यवर्यैरिह शान्तिराख्यया ॥ १७ ॥
कृतं पुरस्तान्मयकैव वन्दनं
महान्तरायप्रशमाय यत्कृते।
भुवस्तलेऽद्यापि विराजते शिवा
सुबुद्धिरेका मम जन्मकारणम् ॥ १८ ॥

समस्त वेदान्त ग्रन्थों के अवलोकन से जो किसी २ भाग्ययुक्त सज्जन को दर्शन देजाती है वह मत्सहोदरी शान्ति भूतल में क्या प्रसिद्ध नहीं है ? जिस के लिये मैंने ही ग्रन्थारम्भ में विघ्नविघातार्थ वन्दन किया । वह श्रीमती सुबुद्धि भी भारत में विद्यमान है ॥ १७-१८ ॥

भुवस्तलेऽन्या अपि सन्ति साम्प्रतं
ममानुमानेन विलासिनीजनाः ।
क्रियेत यासां यदि वर्णनं तदा
सुखेन काव्यान्तरकल्पनं भवेत् ॥ १९ ॥

न शिक्षिताश्चेद्भवन्मयाऽधुना
निदर्शिताः काव्यपथेन योषितः ।
कथं भवेन्नाम गुणानुकीर्तनं
वदन्तु तावद्भवतीषु पण्डिताः ॥ २० ॥

मेरे अनुमान से और भी बहुतसी विदुषियां जगत् में होंगी जिन का यदि वर्णन किया जाय तो दूसरा काव्य बन जावे । यदि यह स्त्रियां विदुषी न होतीं तो आज इन का नाम कौन लेता ? ॥ १९-२० ॥

शिशुत्वभावे पठनं यथायथं
बलेन याभिः कृतमत्र भारते ।
सुखेन ता एव समस्तसाधनै-
र्यशःशरीरेण चरन्ति दारिकाः ॥ २१ ॥

यतोविसृष्टं भवतीभिरुत्तमं
विचारनाशात्पठनं सुखावहम् ।
ततोजनैर्दासपदं नियोजितं
न दृश्यते किं भवतीभिरुच्यताम् ॥ २२ ॥

जिन स्त्रियों ने बचपन में विद्या में परिश्रम किया वे ही आज सारे भारतवर्ष में विख्यात हैं। जब से तुमने मूढ़ता से पढ़ना छोड़ा तभी से पुरुषों ने तुम्हारे लिये दास पद देदिया ॥ २१-२२ ॥

एतद्विहाय पदमादरतो यदासीत्
पूर्वं शिवासु भवतीषु विशालभावम् ।
विद्याबलेन चपलं स्तवत्तदेव
संप्राप्य सौख्यभरिताः प्रभवन्तु वध्वः ॥ २३ ॥

गौरवोदयनिदानसमृद्धे वेदशास्त्रविशदीकृतभावे ।
अत्र नव्यरचनामृतबन्धे स्वागतं भवतु सर्वसखीनाम् ॥२४॥

शिवं शिवो वितरताद्भारतोदितमानवे ।
मा भवे पुनरुद्भूतिं सर्वथा मन्दयोषिताम् ॥ २५ ॥

इस को छोड़ पहिले जो देवी पद था उसी को फिर विद्याबल से शीघ्र प्राप्त कर समस्त स्त्रियां आनन्दित हों, गौरवोदय कारणों से समृद्ध-विशद किया है वेद शास्त्रों का भाव जिस में ऐसे इस नवीन पद्यामृत निबन्ध में सब सखियों का स्वागत हो । परमेश्वर भारत के पुरुषों में कल्याण करे और मूर्ख स्त्रियों को कदापि जगत् में जन्म न दे । यही अन्तिम निवेदन है ॥ २३-२५ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्म्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
प्राचीनविदुषीवर्णनं नाम
तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः

इतः परं प्राक्तनमानिनीगण-
स्थितावभूद्यद्व्यवहारवर्धनम् ।
तदेव सर्वोदयहेतवे मुदा
मयाऽत्र सर्गे नु विविच्यते रसात् ॥ १ ॥
न कोपि मन्दोऽभवदात्मजस्तदा
न दुःखितो नापि च हीनकल्पनः ।
किमन्यदस्माद्गृहिणां गृहेषु तद्
बभूव सन्मङ्गलकृत्यवर्तनम् ॥ २ ॥

प्राचीन स्त्रियों के समय में जो कुछ यहां पर वर्ताव था उसी को सर्वोपकारार्थ मैं यहां पर लिखता हूं । उस समय में न कोई पुत्र मूर्ख होता था, न कोई दुःखी, न मन्द कल्पना करने वाला । कहां तक कहा जावे, गृहों में मङ्गल ही मङ्गल दृष्टि पड़ता था ॥ १-२ ॥

गृहे गृहे वैदिकधर्मवृद्धये
समुत्कचित्ता मुनिवर्यसन्ततिः ।
नभः समस्तं हुतधूममण्डलैः
प्रपूरयामास तुषारपूरितम् ॥ ३ ॥
निसर्गसौरभ्यनिदानसुन्दरः
पुरे पुरे यज्ञमहोजनादृतः ।
समस्तदुःखोपशमं तथाऽकरो-
द्यथा न कोपि प्रबभूव दुःखितः ॥ ४ ॥

वैदिक धर्म वृद्धि में दत्तचित्त मुनियों की सन्तति गृह गृह में यज्ञ कर समस्त आकाश मण्डल को धूमायित करती थी । नगर २ में सुगन्ध के कारणों

से सुन्दर यज्ञोत्सव इस प्रकार कष्टों को मिटाने के लिये तैयार था जिस प्रकार कोई भी दुःखित न हो ॥ ३-४ ॥

बभूव तस्मिन्समये न कापि सा
नवानभावे गतभर्तृकाऽबला ।
न काप्यभूत्प्रोषितभर्तृका तथा
न पुत्रहीना न च पौत्रवञ्चिता ॥ ५ ॥
ववर्ष मेघोऽपि समस्तभूतले
तदा प्रचण्डांशुमयूखतर्जितः ।
बलेन तद्वन्नियमेन वा तथा
यथा न दुर्भिक्षमभूत्कथञ्चन ॥ ६ ॥

न कोई स्त्री तरुणावस्था में विधवा होती थी, न कोई प्रोषितभर्तृका होती थी और न कोई पुत्र तथा पौत्रों से रहित रहा करती थी । सूर्य की परिमित गर्मी से मेघ भी समय २ में इस प्रकार वरसता था जिस से दुर्भिक्ष का नाम तक भी संसार में न हो ॥ ५ ६ ॥

परस्परालापविवृद्धसत्कथः
समस्तवेदोपनिषन्महापथः ।
जगाम वृद्धिं परमामिह श्लथः
समूढदर्पोऽपि लयं यथातथः ॥ ७ ॥
न विद्यया वञ्चितमुत्तमं कुलं
न योषया धर्षितमुज्ज्वलं बलम् ।
न कर्हिचिद् वृद्धिमियाय तच्छलं
समस्तमेतन्मुदमाप भूतलम् ॥ ८ ॥

परस्पर विचार से विवृद्धकथ वेदपथ वास्तव में मूढ दर्पों को श्लथ बना कर पूर्ण वृद्धि को प्राप्त होता था और कोई कुल विद्या से वञ्चित न था, न उज्ज्वल बल स्त्रियों करके आक्रान्त था, न छल बढ़ता हुवा दृष्टि पड़ता था । सारा ही भूतल आनन्दित रहता था ॥ ७-८ ॥

क्रमेण कालस्य भुवस्तलेऽधमाः
कुतोऽप्यभूवन्निगमद्विषोजनाः ।
बलादविद्यावशमेत्य यैः कृता
नवा पुराणेति पदेन कल्पना ॥ ९ ॥
वचो नवीनं प्रतिपाद्यते स्त्रियां
सुतोन्नतिं मन्दतयाऽवरुध्य च ।
समस्तमेतद्भुवनं महोन्नतं
रसातलं निन्युरतीतसंविदः ॥ १० ॥

समय के हेर फेर से कुछ समय के अनन्तर इस प्रकार के जन प्रकट हुवे, जिन्हों ने अविद्यावश नवीन कल्पना को पुराना माना और नवीन श्रुतियां बनाकर स्त्रियों की शिक्षा रोकी। उच्चपदवी को पहुंचा हुवा भारत रसातल को पहुंचाकर छोड़ा ॥ ९-१० ॥

अतीव हीना धनमानवर्ज्जिता
भुवस्तले ये प्रतिभान्ति मानवाः ।
प्रसादतस्ते निजमूढयोषिता-
मदः समस्तैरपि मन्यते बुधैः ॥ ११ ॥
गतः स्वधर्मोऽपि समस्तसौख्यद-
स्तदाप्रभृत्येव नु यस्य सेवनात् ।
समेति जन्तुर्मनसा समीहितं
मुदाऽपवर्गं सुखधाम सत्वरम् ॥ १२ ॥

आज कल मनुष्य जो दीन, हीन, लीन से प्रतीत होते हैं, वह सब अपनी २ स्त्रियों की कृपा से ही होते हैं। यह बात सब माने हुवे हैं। जिस के सेवन से मोक्ष तक मिलता है, वह वैदिकधर्म भी तभी से इस लोक में नाममात्र रह गया है ॥ ११-१२ ॥

यदार्धमङ्गं मनुजस्य मूढतामनुव्रजेदर्धमहो सुशिक्षितम् ।
भवेत्कथं तर्हि तदात्र भारते सुविद्यता सर्वसुतानुगा द्रुतम् ॥१३॥

रजोगुणे मूढपदं समागते कुरूपता दुर्दशया नु सङ्गता ।
स्वयं व्रजत्येव तदिन्द्रियं बलाद्यतःसमस्तप्रभवो जनैर्मतः ॥१४॥

जब कि पुरुष का आधा अङ्ग मूढ़ हो और आधा सुशिक्षित, तब क्यों कर पुत्र सर्वांश में सुविद्य हो। रज के अन्दर जब मूढ़ता का अंश आगया तब वीर्य उस से क्यों कर बच सकता है, जिस की प्रधानता से शरीर बनना माना गया है ॥ १३-१४ ॥

क्रमेण कालस्य पुनर्दयालुना भुवस्तले वैदिकधर्मवृद्धये ।
गुणीदयानन्दसरस्वतीयतिःप्रमोदलोकादिह नोदितःशिवः॥१५॥

यदागमादत्र भुवस्तलेऽभवन् पुराणनाशैकपटोः पुरे पुरे ।
समस्तकन्यापठनाय सर्वशोनवीनविद्यालयकल्पनाःशिवाः १६

फिर समय के हेर फेर से ईश्वर ने जगत् में वैदिक मत रखने के लिये मुक्तावस्था से ऋषि दयानन्द को यहां पर भेजा जिस के आने से नगर २ में फिर कन्याओं के लिये पाठशालायें बनगईं ॥ १५-१६ ॥

निरस्ततृष्णस्य ऋषेरनुग्रहा-
च्छरन्निशानाथमयूखनिर्मलम् ।
न वीक्ष्यते किं परितो महोदये-
र्जने जने वैदिकधर्मवर्तनम् ॥ १७ ॥

एवमत्र परमेश्वरलीलालास्यतोनिखिलभारतवर्षे ।
साम्प्रतं पुनरुदारसुतानां शिक्षिणोत्थितिरभूदपरं किम् ॥१८॥

क्या आप नहीं देखते, आज उसी विगतलालस ऋषि के अनुग्रह से शारदेन्दुसंनिभ वैदिक मत मनुष्य मात्र में वर्त रहा है। इस प्रकार ईश्व-

रानुग्रह से फिर दुबारा समस्त भारतवर्ष में समस्त कन्याओं की शिक्षा होने लगी और क्या कहूं ॥ १७-१८ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
कन्याविद्योदयो नाम
चतुर्थः सर्गः
॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

श्रीमती जनिमियाद्यदा सुता गेहिनां विधिविधानतस्तदा।
पञ्चवर्षमितकाललालनापालनापि भवने विधीयताम् ॥ १ ॥
मातृजन्यपरिशिक्षणाबलात् संस्कृतादिकथनक्षमा यदा।
सा भवेन्निजसुता तदा जनैर्लेखनादिविषये नियोज्यताम् ॥२॥

जब गृहस्थों के घर में पुत्री पैदा हो तब पांच वर्ष तक उस की लालना एवं पालना घर में ही करनी योग्य है, माता की शिक्षा से जब वह कुछ २ संस्कृत बोलने लगे तब उस को लिखना सिखाना चाहिये ॥ २ ॥

लेखनेपि निपुणा यदा भवेद्भाषणेपि चतुरा तदा द्रुतम्।
कन्यकागुरुकुले निवेश्यतां कन्यका पुरतएव निश्चिते ॥ ३ ॥
पूर्णसाधनसमुन्नते कुले सा परीक्ष्य दुहिता विधेर्वशात्।
औपनायनिकदीक्षया युता वैदिकेन विधिना विधीयताम् ॥४॥

जब लिखने और बोलने में वह निपुण होजावे तब पहिले ही से निश्चित किये कन्यागुरुकुल में वह भेजनी उचित है। समस्तसाधनयुक्त उस कुल में उस की परीक्षा करके संस्कारपूर्वक उस का यज्ञोपवीत कराना चाहिये। जैसा कि पुत्रों का होता है ॥ ३-४ ॥

प्रत्यहं नियमतस्ततः प्रगे शौचमज्जननिमज्जने कृते।
सांध्यकर्म हवनं च कार्यतां पण्डिताभिरिति वैदिकव्रतम् ॥५॥
नित्यकर्मणि निवृत्तिमागते पूर्वमङ्गपठनाय तत्परम्।
मन्त्रभागपरिशीलनाय सा योज्यतामिति मयानुमन्यते ॥६॥

उस के अनन्तर प्रति दिन प्रातःकाल शौच, दन्तधावन एवं स्नान कराकर सन्ध्या, अग्निहोत्र कराना चाहिये। नित्यकर्म करने पर पहिले अङ्ग, फिर मन्त्र भाग उस को पढ़ाना उचित होगा ॥ ५-६ ॥

---

१ योग्यपुत्रीजननक्रमो बृहदारण्यके द्रष्टव्यः ॥

तारकासरणिमध्यमागते भास्करे सकललोकभास्करे ।
सूपकारगणसाधितस्थले भोजनादिकरणे नियोज्यताम् ॥७॥
भोजनेपि रसवन्निवर्त्तिते दारिकागणवरेण तत्परम् ।
वाग्विनोदविषयोपि साकमातन्यतां सुविदुषीभिरादरात् ॥८॥

मध्याह्न के लगभग भोजनागार में उन को भोजन कराकर कुछ समय उन के लिये आपस में या पण्डिताओं के साथ वार्त्तालाप करने के लिये दे देना अनुचित न होगा ॥ ७-८ ॥

वाग्विनोदकरणात्परं गण: कन्यकाजनवरस्य तादृशे ।
कर्मणि प्रतिनियोज्यतां स्फुटादृशोहि गुणकर्मतो भवेत् ॥९॥
सीवनादिगृहकर्मसाधने साधिते सकलकन्यकाजनै: ।
सांध्यएव नियमानुसारतोनैगमो विधिरुपास्यतां शिवः ॥१०॥

वार्त्तालाप के अनन्तर उन कन्याओं को ऐसे कर्मों में लगाना चाहिये जैसी कि वह गुण कर्मानुसार से हों, उस के अनन्तर सायंकालिक जो संध्यादि कर्म है, उस में उन को लगाना चाहिये ॥ ९-१० ॥

भोजनात्परतरं निशोदरे भिन्नभिन्नशयनेषु रक्षकै: ।
रक्षितेषु मृदुलेषु दारिका: सादरं शयनकर्मणि स्थिता: ॥११॥
एवमेव दशवर्षयापनैस्तत्र ताभिरनुसंगते शिवे ।
साधने निखिलकृत्यकौशलं जातिभेदवशत: समेत्यलम् ॥ १२ ॥

उस के अनन्तर भोजन करने के पश्चात् रक्षकों करके रक्षित शयनागारों में शयन करें। इस प्रकार दश वर्ष तक विद्यालय में रहकर उन के लिये जात्यनुसार समस्त कार्यनैपुण्य होजाता है ॥ ११-१२ ॥

जन्मन: प्रभृति षोडशाब्दिका: स्युर्नयावदिह कन्यकाजना: ।
ब्रह्मचर्यनियमेन तेन तास्तावदुक्तविधिना वसन्तु तत्[3] ॥ १३ ॥

---

१ भवन्त्विति शेषः । २ त्वा इति वाक्यशेषः । ३ तद्गुरुकुलम् ॥

षोडशाब्दमतिवाह्य कापि सा तत्र गच्छतु परीक्षिका सती।
या समस्तविषयेषु पाटवं धारयेदवनता च या भवेत् ॥ १४ ॥

जन्म से लेकर जब तक वह सोलह वर्ष की न हो, तब तक वहां इस ब्रह्मचर्य नियम से रहे, फिर जो समस्त विषयों में निपुण और विनयवती हो ऐसी परीक्षिका वहां जानी चाहिये ॥ १३-१४ ॥

सापरीक्षणमुपागता कुले प्रारभेत्सकलभावभावनैः ।
पारितोषिकविधानतश्च ता योजयेच्चतुरपुत्रिकाः स्वयम् ॥ १५॥
दानमानविधिना प्रतोष्य ताः पण्डिता गृहजनेन तत्परम् ।
कन्यका अपि गृहेषु सादरं प्रापिताः परिलसन्तु सद्गुणैः १६
एवमुक्तमतया सुशिक्षणं कन्यकाजनगणस्य भारते ।
साध्यतामृषिमतेन भावुकाः! को विलम्ब इति रम्यकर्मणि ॥१७॥

वह परीक्षिका समस्त प्रकारों से उन की परीक्षा लेकर उन को स्वयं पारितोषिक देवे । अनन्तर कन्या के बान्धव उस की अध्यापिका को सन्तुष्ट कर उस को अपने गृहों में लावें। इस प्रकार ऋषिदर्शित मार्ग से शीघ्र ही मित्रो ! भारत में कन्याओं को शिक्षा दो ॥ १५-१६-१७ ॥

यावदेष विधिरत्र भूतले नागमिष्यति समुत्थितिं पराम् ।
तावदार्यमतवृद्धिरत्र सा नो भविष्यति किमत्र शङ्कनम् ॥ १८ ॥
इति विचार्य यथायथमादरान्मनसिधर्मपरायणता निजे ।
बुधजनैरधुनानुविधीयतां भवतु यद्वशतः सकलं शिवम् ॥१९॥

जब तक यह प्रकार इस जगत् में प्रचलित न होगा, तब तक कदापि भारत की उन्नति न होगी । यह विचार कर समस्त सज्जन अपना मन इस विषय में देना कि जगत् का भला हो ॥ १८-१९ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
शिक्षाक्रमवर्णनं नाम
पञ्चमः सर्गः
॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

गुरुकुले पठनक्रमसेवनादधिगते नवयौवनसङ्गमे ।
परिणयव्यवहारनिवर्तनं समुचितं निगमोदितशासनात् ॥ १ ॥
प्रथमतो गुणकर्मपरीक्षया गृहजनैर्बहुशः परिवीक्षिते ।
नववरे रमणीयसुविग्रहे यदि वधूरनुयाति तदा शिवम् ॥२॥

गुरुकुल में ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करते २ जब यौवन प्राप्त होवे तब वैदिक रीतिसे विवाह करना । गुण कर्मानुसार यदि पहिले से निश्चित वर के साथ विवाह होवे तब कल्याण हो ॥ १-२ ॥

शशिकलाब्दमिता यदवध्यलं नहि भवेत्तनया गृहिणां गृहे ।
तदवधि प्रथितं करपीडनं कथमपीह न कार्यमनार्यगम् ॥३॥
मुनिवरेण पतञ्जलिना निजे विलिखितं नितरामिह सुश्रुते ।
शशिकलाब्दमिताकरपीडनं निगममन्त्रमनुव्रजता सता ॥४॥

जब तक गृहस्थों के गृहों में सोलह वर्ष की कन्या न होवे तब तक उस का कदापि विवाह नहीं करना चाहिये । इसी बात को वेदमन्त्रपूर्वक ऋषि पतञ्जलि ने भी निजनिर्मित सुश्रुत में बतलाया है ॥ ३-४ ॥

मुनिमतं किल ये मनुजाहठात्प्रतिनिवार्य कृतिं परितन्वते ।
नियतमेव निजान्वयनाशनं निजसुतामरणं च वितन्वते ॥५॥
मनुजनिर्मितिरत्र समाश्रिता यदवधेर्मनुजैर्जगतीतले ।
प्रतिदिनं विधवाजनवर्धना तदवधेरनुयाति दृशोः पदम् ॥६॥

जो पुरुष ऋषि का मत छोड़ हठ से विरुद्ध काम करते हैं वह अपने वंश एवं कन्या का अवश्यमेव नाश चाहते हैं । जब से निजकल्पित मार्ग चलाया तब से प्रतिदिन विधवायें बढ़ती हैं ॥ ५-६ ॥

बलविभूतियशोरहिता जनास्तदवधि प्रभवन्ति भुवस्तले ।
यदवधीदृशपाणिनिपीडने न विबुधैर्मतिराद्रियते शिवा ॥ ७ ॥

न चिरजीवनवत्यधुना प्रजा किमिति सा भवतीति विचारणे।
मम मते तु समेति कुमारिका प्रजननंमुनिवाक्यविकर्षणात्॥८॥

जब तक ऐसे विवाहों के रोकने में जन दत्तचित्त न होंगे तब तक कदापि सन्तानें अच्छी न होंगी। यदि शीघ्र मरण क्यों होता है, यह प्रश्न उठाया जाये तो कुमारीप्रसव के अतिरिक्त और कारण न मिलेगा ॥ ८ ॥

विधिविधानतया विनिवर्त्तिते परिणये गुणिनोतियशस्विनः।
निजकुलाभरणास्तनयाः स्वयं प्रति भवन्ति किमत्र विचार्यते ९
नववधूरपि निश्चलभावतामुपगता भवति श्वशुरालये।
निगमरीतिमुपेयुषि सर्वथा नवसुताकरपीडनकर्मणि ॥ १० ॥

विधिपूर्वक विवाह करने पर पुत्र स्वयं कुलदीपक, गुणी, धनी होते हैं, इस में विचार ही क्या करना। इस प्रकार के विवाह होने से स्त्री भी श्वशुर-गृह में जाकर निश्चलता को प्राप्त होती है ॥ ९-१० ॥

भवतु नाम कथं ध्रुवता विना नववधूषु शिवं ध्रुवदर्शनम्।
क्व च निरुद्धपदेन सहैकता न संदृशोर्यदि सास्त्यवरुन्धती ॥११॥
हृदयसङ्गमनं कथमाभवेन्निगममन्त्रमृते युवतीगणे।
कथमहो स्थिरताश्मकृत्चं विना पतिकुले प्रभवेदिति बुध्यताम्

विना ध्रुव दर्शन के पति के यहां स्त्री ध्रुव क्यों हो क्योंकि विना अरुन्धती के देखे वह निरुद्ध कैसे हो, विना मन्त्र पढ़े आपस में मन एक सा क्यों हो तथा जड़ पाषाण पर विना पैर दिये स्थिरता कहां से हो ॥ ११-१२ ॥

इति विमृश्य रजोगमनोत्तरं शुभगुणानुगतेन वरेण सा।
निजसुता करपीडनवर्त्मना विधिनियुक्तपदैरनुयोज्यताम्१३
भवति दूरमुपेत्य हिता गृहं विधिवशाद्दुहितेति मुनेर्वचः।
प्रतिविचार्य निजे हृदि पुत्रिकां परिणयादतिदूरतरं नयेत् १४

१ पयीति शेषः। २ क्रिया इति शेषः। ३ पतिरिति शेषः॥

ऐसा विचार कर रजोदर्शन के अनन्तर ही उस कन्या का योग्य वर के साथ सम्बन्ध करना चाहिये। यास्काचार्य के निर्वचनानुसार कन्या को दूर ही विवाहित करना अच्छा प्रतीत होता है। पति एवं पिता दोनों को यह चाहिये ॥ १३-१४ ॥

झटिति तात गृहस्थजनागमः पुनरहो बहुदुःखसमागमः।
समुदयं प्रतियाति यथायथं निकटवर्त्तिनि पाणिनिपीडने १५

दूरं कृते परिणये तु परस्परस्मिन्
प्रीतिः समाविशति सादरतापि कृत्ये।
सर्वत्र संभवितुमर्हति सर्वभावै
स्तस्मात्सुदूरतरमेव सुता प्रदेया ॥ १६ ॥

समीप विवाह करने पर बार २ पिता के सन्देश आने एवं और भी अनेक कष्ट उत्पन्न होते हैं और दूर करने पर परस्पर प्रीति तथा अनेक कार्यों में आदर बना रहता है, इस लिये दूर ही कन्या देनी चाहिये, समीप में कदापि नहीं ॥ १५-१६ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
विवाहसमयनिश्चयो नाम
षष्ठः सर्गः
॥६॥

सप्तमः सर्गः

यस्मिन्दिने परिणयस्य विनिश्चयः स्या-
त्तस्मिन्नृणोः परतरं शुचितामुपेत्य ।
वेदीपरिस्तरणपूर्वकमग्निकार्यं
कर्त्तव्यमागमनतः पुरतोजनानाम् ॥ १ ॥

पश्चाद्वरेऽभिमुखमेत्य विलिष्ठमाने
रम्यां वरावृतपरिग्रहया सुपुत्र्या ।
आराधनार्थपदबन्धमयं प्रयोज्यं
वाक्यं वरे तदनुगेषु च बान्धवेषु ॥ २ ॥

भव्यासनं क्षणमुपेयुषि देवदेवे
पाद्यार्घ्यकल्पनमरं प्रविधाय पूर्वम् ।
पुत्र्यैव रम्यजलमाचमनाय देयं
तस्मै वराय वरणीयपदाय हर्षात् ॥ ३ ॥

ऋतु स्नान के अनन्तर जिस दिन विवाह नियत हुआ हो, स्नानादि से निवृत्त होकर मनुष्यों के आगमन से पूर्व ही वेदी का काम तयार रखना चाहिये। वर के आने पर सुन्दर वस्त्र पहिने हुई कन्या स्वयं उठकर उन का स्वागत करे। अनन्तर पाद्य तथा अर्घ्य देकर स्वयं ही कन्या आचमनयोग्य जल वर को देदेवे ॥ १-२-३ ॥

कालक्रमेण मधुपर्कमपि प्रदाय
कन्या वराय तदनन्तरमेतदर्थम् ।
रम्यां यथाविभवमादरतोऽतिदुग्धां
धेनुं निवेद्य विनयाऽवनताऽनुतिष्ठेत् ॥ ४ ॥

---

१ इस सर्ग में कन्यादान के अतिरिक्त सब काम वर वधू ही करेंगे ॥

स्वीकारमात्रपरके वरवाग्विसर्गे
तस्याःपिताऽविरतधारमनन्यपूर्वम् ।
तस्याःकरंवरकरे विनिधाय पुत्री-
कृत्यान्निवर्तितमनाः प्रभवेत्किमन्यत् ॥ ५ ॥

कन्यापरिग्रहमवाप्य वरोऽपि यद्वत्
कार्यं विधेरनुगतं प्रभवेत्तदाशु ।
सम्पाद्य मन्त्रपदपूर्वकमग्निकृत्यं
कुर्यात्ततः परतरं समयोचितं यत् ॥ ६ ॥

अनन्तर वर के लिये मधुपर्क देकर इस के लिये सुन्दर दूध देने वाली गौ को प्रदान कर नम्रतापूर्वक बैठ जावे। दिये हुवे सब पदार्थों के स्वीकार करने पर उस का पिता जलपातपूर्वक अनन्यदत्त उस के कर को वर के कर में देवे। उस का दान लेकर वर भी जो २ प्रासङ्गिक कार्य हों, उन को कर विधिपूर्वक हवन करे और जो समयानुकूल हो, सब करता रहे ॥ ४-६ ॥

इत्थं क्रमेण वरकन्यकयोः प्रजाते
प्रासङ्गिके निखिलकर्मणि वेदिमेत्य ।
कन्यावरौ शुभपरिक्रमणाय वन्हेः
सज्जौ यथायथमुदारमती भवेताम् ॥ ७ ॥

वेदानुकूलनियमप्रतिपालनाय
वेदीपरिक्रमणकालमुपेत्य हर्षात् ।
वेदैर्मिताः प्रथितमग्निसमक्षमेत्य
भ्रामर्य आशु विधिवत्परिवर्त्तनीयाः ॥ ८ ॥

एकैकपादपतनक्रममेत्य यानि
वाक्यानि धर्मपरिपालनभावगानि ।

१ समाप्ते इति पाठान्तरम् ॥

प्राणेश्वरेण पुरतः प्रविधाय पत्नीं
वाच्यानि तानि विनिवेदयते जनोयम् * ॥ ९ ॥

इस प्रकार क्रम से वरवधू के समस्त कार्य होने पर वह दोनों वर वधू अग्निपरिक्रमण के लिये तयार हों। वेदोक्तकर्म करने के लिये वेदी पर वेद§ मित ४ हीं परिक्रमा देकर प्रतिज्ञा के लिये पवित्रहृदय होना चाहिये। इस अवसर में एक २ चरण रखते हुवे जो २ प्रतिज्ञा करनी चाहियें, वही अग्रिम सात श्लोकों में बतलादी गई हैं ॥ ७-८-९ ॥

आर्ये[1] भव त्वमिषे एकपदी विनीते
सा मामनुव्रज यथा परमेश्वरस्य।
कारुण्यतः प्रतिपदं जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि भूतलेस्मिन् ॥ १० ॥

ऊर्ज्जे[2] भवाऽमृतलते द्विपदी यथावत्
सा मामनुव्रज यतः सकलेष्टदस्य।
संमाननान्निजगृहे जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि सभ्यवृत्तान् ॥ ११ ॥

राये[3] निधेहि चरणं महिते तृतीयं
पश्चादनुव्रज च मां विधिवत्प्रसादात्।
येनात्र विश्वबलये जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि वेदवेत्तॄन् ॥ १२ ॥

तुर्यं पदं प्रतिनिधेहि मयोभवाय[4]
धर्माय मां पुनरनुव्रज सभ्यवृत्ते।
यस्मादिह प्रतिपदं जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि धर्मभावान् ॥ १३ ॥

---

* ग्रन्थकारः। § वेदाश्चत्वारः। १ इडित्यन्नम् (शतपथे)। २ ऊर्जे रसाय। ३ रायस्पोषोधनम्। ४ मय इति सुखम् ॥

तत्पञ्चमं प्रतिनिधेहि पदं प्रजार्थे[5]
सा त्वं तथा भव यथा परमस्य पुंसः ।
संभावनात्प्रतिलवं जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि काव्यकर्तॄन् ॥ १४ ॥

षष्ठं पदं कुरु पुरः सुखदे ऋतुभ्यः[6]
सा मामनुव्रज यथा जगदीश्वरस्य ।
निर्देशतः प्रतिदिनं जरदष्टयस्ता
विन्दावहै बहुसुतानपि लोकमान्यान् ॥ १५ ॥

संख्याय[7] सप्तमपदं प्रविधेहि वामे
पश्चादनुव्रज च मां भवसागरस्य ।
पाराय येन सकला जरदष्टयस्ता
विन्दावहै किमधिकं तनयानऽभीष्टान् ॥ १६ ॥

" सप्तभिः कुलकम् "

(इष एकपदी भव) इस मन्त्र को बोल वर वधू को साथ लेकर ईशान दिशा में एक पग चले और चलावे, (ऊर्जे द्विपदी भव) इस को कह दूसरा पग चले चलावे, (रायस्पोषाय त्रिपदी भव) इस को बोल तीसरा पग चले चलावे, (मयोभवाय चतुष्पदी भव) इसे बोल चौथा पग चले चलावे (प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव) इसे कह कर पांचवां पग चले चलावे, (ऋतुभ्यः षट्पदी भव) इसे कह कर छठा पग चले चलावे, (सखे सप्तपदी भव) इसे कह सातवां पग चले चलावे ॥ १०–१६ ॥

एवं विधाय विधिवद्वचनोपनोदं
वेदक्रमेण परितोगमनात्तदन्ते ।
सौभाग्यमस्त्विवति वचः शुभवर्णवद्धं
वाच्यं वरेण निजनव्यवधूकृतेऽन्ते ॥ १७ ॥

५ पुत्रार्थे । ६ षड्तुसुखाय । ७ मित्रतायै ॥

एतावदेव करणं पुरतः समाप्य
विश्राममेत्य च पुनर्निशि संगतां ताम् ।
वेदीमुपेत्य विधिवद्ध्रुवदर्शनादि
वध्वा वरस्य कथनेन विधेयमारात् ॥ १८ ॥
मध्ये यदग्निकरणादिकमङ्गमस्य
कार्यस्य तन्निगमरीतिपरायणत्वात् ।
कर्त्तव्यमेव वरपक्षगतेन वापि
कन्यागतेन न विशेष इहास्ति कोपि ॥ १९ ॥

इस प्रकार वधू वर परिक्रमण कर आवश्यक हवनादि करके अन्त में वधू के लिये वर आशीर्वाद दे । इतना कार्य दिन में कर बीच में कुछ विश्राम ले सायंकाल को फिर वधू, वरकथनानुकूल ध्रुवादिदर्शन करे । प्रातः काल और सायंकाल के मध्य में जो कुछ कर्त्तव्य हो वह किसी एक पक्ष के जन कर लेवें । कुछ भेद नहीं ॥ १७-१८-१९ ॥

पश्चाद्यथागतमनुष्यशुभागमाना-
मेकान्तमेत्य दिवसत्रयतः परस्तात् ।
आवश्यकं नवसुतोद्भमनैकमूलं
कर्तव्यमेव करणं दिवसे चतुर्थे ॥ २० ॥
दत्वा यथोचितधनं समये तदानी-
माचार्यबोधितजनाय वरो वरेण्यम् ।
भर्गोनिवेश्य हृदये पथि मन्त्रपूर्वं
तत्तद्विधाय करणं निजगेहमेयात् ॥ २१ ॥
एतन्मया निगदितं प्रथितं यथावत्
मुख्यं विवाहविधिकर्म नवीनपद्यैः ।
शेषं यदस्ति समये समये विधेयं
तद्वैदिकेन विधिना सकलं विधेयम् ॥ २२ ॥

अन्त में आगत जनों का स्वागत कर तीन दिवस तक वधू वर नियम से रह कर चतुर्थ दिन में गर्भाधान संस्कार करें। जिन को आचार्य बतला दें उन को तथा आचार्य को अन्त में सत्कृत कर ईश्वर का ध्यान धरता हुवा पत्नी को लेकर घर जावे। यहां पर मुख्यतया जो २ कर्त्तव्य कार्य था वह मैंने बतला दिया और जो शेष हो वह वेदानुकूल समय २ पर स्वयं कर लेना चाहिये॥ २०-२२॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
विवाहविधिबोधनो
नाम सप्तमः सर्गः

॥ ७ ॥

—***—

अष्टमः सर्गः

अतः परं तातपदैर्विवाहिता सुतानुशास्याहितवाक्यबोधनैः ।
प्रवेदयथा सा गृहमेत्य नैजकं समस्तभावेषु विचक्षणा क्षणम् ॥१॥
न भूषणैर्भूषयितव्यमस्ति ते शरीरमेतद्धिनयार्जवादिकम् ।
अतः सुते त्वं परिधेहि सादरं न भारभूतैरुपभूषणैः सुखम् ॥२॥

विवाह के अनन्तर पिता अपनी पुत्री को कुछ समय व शिक्षा दे जिस
से वह अपने घर जाकर हर प्रकार से कुशल एवं सभ्य रहे। अब वही दर्शाते
हैं) हे सुते ! मैंने तेरा शरीर रजतादि भूषणों से भूषित नहीं बनाना है।
इस लिये विनयादि भूषण तू पहिन ॥ १—२ ॥

न नूपुरौ नापि सकङ्कणक्कणो न हारवल्ली न च केशकल्पना ।
तथा द्रुतं भूषयतेऽबलाजनं यथा सुवाणी परिभूषयत्यलम् ॥३॥
नवं दुकूलं मधुराक्षरोज्ज्वलं वचोविनीताचरणं च सर्वथा ।
विमुग्धमन्दस्मितमास्यकल्पनं समस्तभावेषु विभूषणाय ते ॥४॥

पैरों में नूपुर, हाथों कङ्कण, हृदय में हार, शिर पर सुसज्जित केश
इतनी शोभा नहीं देते, जितनी मृदुल वाणी दिया करती है। उज्ज्वल वस्त्र
धारण, मधुरभाषण, विनीताचरण, प्रसन्नमुखता, यह चार बातें भूषणों
के ऊपर भी भूषण मानी जाती हैं ॥ ३-४ ॥

अतस्त्वया पत्युरुपेत्य सद्गृहं विनीतभावेन महत्सु सर्वदा ।
प्रवर्तनीयं मधुराक्षरं वचः प्रवर्तनीयं सकलक्रियास्वपि ॥५॥
समानपत्नीषु सखित्वभावना शरीरनाथस्य गृहे यथायथम् ।
महत्त्वबुद्धिर्महतीषु सादरं विभावनीया किमतोऽनुशासनम् ॥६॥

इस लिये तैने पति के गृह में जाकर बड़ों के सामने नम्रतापूर्वक रहना
और समस्त कार्यों में मधुर बोलना, बराबर की स्त्रियों में सखी का सा
बर्ताव करना और बड़ों में उच्चता का भाव रखना ॥ ५—६ ॥

रुषानुयुक्तेपि शरीरनायके कथं कथंचिद्गृहकार्यविक्षतौ।
प्रतीपकृत्यं वचनं च तत्कृते न वाच्यमेतत्तव वर्तनं परम् ॥७॥
सुदक्षिणा स्तपरिचारिकागणे भवेस्त्वमाप्य स्वगृहं यतः सुते।
भवेत्तवात्यन्तमहत्पदे स्थितिः कृतिश्च सर्वापि यथेष्ठसाधना॥८॥

किसी कारण गृह कार्य के बिगड़ जाने पर यदि पति रुष्ट हुआ हो तो उस के विरुद्ध न कुछ करना, न बोलना, दासियों के साथ बहुत चतुरता से वर्ताव करना, जिस से उन की दृष्टियों में तेरा गौरव बढ़े और घर का कार्य भी भले प्रकार हो ॥ ७-८ ॥

समानपत्नीपरिधानभूषणप्रलोकनान्नैव निजा मतिः स्थिरा।
विचालनीया न च तादृशव्यये निवेशनीया पतिकल्पना स्वयं।
न रूपगर्वः परिशिक्षिते त्वया कदापि कार्यः पतिगेहमेत्य तत्।
न च त्रपा तत्र समस्तवर्तने कदापि हेया गुणएष योषिताम् १ ॥

बराबर की स्त्रियों के वस्त्र एवं भूषण अच्छे देख अपनी मति कदापि न चलानी और न उन के लिये अपने पति से कुछ कहना, न कदापि अपने अच्छे रूप का मन में गर्व करना, न कोई काम निर्लज्ज होकर करना। चूंकि लज्जा ही भूषण है ॥ ९-१० ॥

न तद्गृहस्था गतिराप्य पैतृकं गृहं विवेच्या विनधानते त्वया।
भवत्यनन्ता कथनेन हीनता कुलद्वयस्यापि विरोधवर्धनात्।
विहायकापट्यपथं प्रियंवदे प्रियं वद त्वं सकलैर्जनैः समम्।
त्वया विधेयं न भवेद्यतो गृहे विमानना कापि कदापि कस्यचित्।

उन के गृह की कोई भी कमी अपने पिता के घर आकर न कहना, ऐसा करने से दोनों गृहों में विरोध और हानियां होती हैं। सब के साथ जितना कुछ वर्त्ताव करना सब कपट छोड़कर करना, जिस से गृह में कभी किसी की त्रुटि न प्रसिद्ध हो ॥ ११-१२ ॥

१ यथाकथंचिदिति पाठान्तरम् ॥

गृहागतेबान्धववत्परेपि सा समादृतिःपूर्णतयैव सर्वशः ।
त्वया विधेया प्रभवेद्यथाशु ते दिगन्तविश्रान्तकथं यशोमलम्१३
गुप्तकार्यं निजनायकस्यसत् कदापि वाच्यं नवयौवनानते ।
वाग्विनोदे परबान्धवोद्धते निजानुवादः प्रथनीय उत्तमः१४

गृह पर आये हुये पुरुषों का वैसा ही आदर करना, जैसा कि हर एक
ार्य में अपने घरकों का किया जाता है। ऐसा करने से तेरा यश शीघ्र ही
र्वत्र फैल जायगा। अपने पति की कोई गुप्त बात किसी के सामने न कहनी
ौर न दूसरों की बातों में जाकर कदापि अपना अधिकार दिखाना ॥ १४॥

हितोपदेशग्रहणे मनस्त्वया प्रदेयमेवातिबलेन शिक्षिते ।
लोयमेवास्ति कलावनुत्तमो न यस्य वक्ता सुलभोस्ति भूतले १५
नग्नभावेन शरीरमार्जनं गृहेपि कार्यं किमहो जनागमे ।
कच्चुरं वस्त्रमपि त्वया सुते कदापि धार्यं श्वशुरालये स्वयम् १६

जहां तक बन सके हितोपदेशश्रवण में अवश्य अपना समय लगाना, यही
क कलिकाल में सर्वोत्तम कर्तव्य है और इस का कहने वाला संसार में सुलभ
हीं। नग्न होकर किसी समय अपने गृहमें भी स्नान न करना, बाहर तो कहना
क्या है और न अपने घर में कभी मलिन वस्त्रों का धारण करना ॥ १५-१६ ॥

निन्दना वन्दनवत्यलं जने प्रयोजनीया गुणगौरवोन्नते ।
ह्यस्य मात्यान्यकथासु नादरस्त्वया विधेयो यदि ते मनःस्थिरम् ॥१७॥
मादकं नारुचिरं न बाधकं न वासितन्नो बहुकालवर्तितम् ।
दार्थजातं निजभोजनोत्सवे कदापि सम्पादयितव्यमण्वपि १८
चिक्कणंस्वादु निरीक्षणोचितं बलप्रदं बुद्धिकरं त्वया सुते ।
धेयमारात्पतिगेहसङ्गमे समस्तभावेन पदार्थसाधनम् ॥१९॥

वन्दनीय जनों की कभी भूलकर भी निन्दा न करना और एकान्त पाकर
ी और व्यर्थ बातों में अपना समय न गमाना, अपने गृह में कभी मादक
रुचिर बाधक वासित बहुकालजात पदार्थ भोजन में न देना, स्निग्ध रुचिर
ीय बल एवं बुद्धि वर्धक स्थिर सरस पदार्थ बनाना ॥ १९ ॥

६

निजस्य पत्युः शयनाय सादरं स्वयं विधेयं नवमासनं त्वया।
पुनश्च सुप्ते सति पादसेवनं सदा सुते कार्यमलभ्यसौख्यदम् २०

एतावदेव कथनं मम पुत्रि रम्यं
पत्युर्गृहं समधिगम्य विवेचनीयम्।
सेव्यं च सर्वविषयेण किमन्यदस्मा-
द्वक्तव्यमस्ति कुरु गच्छ यथेष्टकृत्यम् ॥ २१ ॥

भोजनोत्तर निज प्राणनाथ के शयनार्थ स्वयं जाकर मृदुल आसन बिछाना और उन के शयन करने पर विना कहे ही चरणसेवन करना, इतना ही मेरा कथन प्राणेश्वर के गृह में जाकर विचारना और प्रतिदिन वर्त्ताव में लाना, इस से अधिक मुझे कुछ वक्तव्य नहीं रहा ॥ २०-२१ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
तातोपदेशवर्णनो नाम
वसुमितः सर्गः
॥ ८ ॥

—***—

नवमः सर्गः

लोकक्रमेण समयानुसृतेश्च यानि
प्राप्तानि पूर्वपुरुषैरपि सम्मतानि ।
तान्येव लोकतलभूषणभूषणानि
सर्गेत्र ...

लोकक्रम तथा ... पुरुषों ने
भी जिन को अनुमत ... र्ग में मैं
सादर वर्णन करता हू ...

सवर्णवर्णा रसर ... ज्वला।
निसर्गरम्यार्थपद ... रम् २

समान वर्ण रस ... ोज्ज्वल
स्वभावसुन्दर भावबो ... खभूषण
है, और नहीं ॥ २ ॥

समस्तमप्यत्र यथ ... त् ।
विनीतवत्से तव ... षणम् ३

जिस के द्वारा भू ... तें सत्
और असत् का बोधन ... विद्या
ही तेरा नवीन कण्ठ ...

विहाय पत्युश्चरण ... ।
समस्तलोकेषु धृत ... णम् ४

---

* १—(क) मृषा वद ...
मुखस्य भू ...
(ख) क्षीयन्ते ... भूषणम् ।
(ग) वशीकरणमन्त्रोयं यज्जन्ते मृदु भाषणम् ॥ (भर्तृहरिः)

निजस्य पत्युः शयनाय सादरं स्वयं विधेयं नवमासनं त्वया ।
पुनश्च सुप्ते सति पादसेवनं सदा सुते कार्यमलभ्यसौख्यदम् २०

एतावदेव कथनं मम पुत्रि रम्यं
पत्युर्गृहं समधिगम्य विवेचनीयम् ।
...
...यम् ॥ २१ ॥

भोजन ... ल आसन बिछाना
और उन ... ना, इतना ही मेरा
कथन प्राणे ... र्ताव में लाना, इस
से अधिक ...

नवमः सर्गः

लोकक्रमेण समयानुसृतेश्च यानि
प्राप्तानि पूर्वपुरुषैरपि सम्मतानि ।
तान्येव लोकतलभूषणभूषणानि
सर्गेऽत्र सादरमहं प्रतिवर्णयानि ॥ १ ॥

लोकक्रम तथा समयानुसार जिन का प्रकरण आचुका और पूर्व पुरुषों ने भी जिन को अनुमत किया है उन्ही भारतभूषण भूषणों का इस सर्ग में मैं सादर वर्णन करता हूं ॥ १ ॥

सवर्णवर्णा रसरागरञ्जिता नवीनबन्धा विलसत्पदोज्ज्वला ।
निसर्गरम्यार्थपटीयसी सुते तवास्ति वाणी मुखभूषणं परम् २

समान वर्ण रस एवं रागों से रंजित नवीनबन्धदेदीप्यमानपदोज्ज्वल स्वभावसुन्दर भावबोधक जो वाणी है वही हे सुते ! तेरा सर्वोत्तम मुखभूषण है, और नहीं ॥ २ ॥

समस्तमप्यत्र यथानुमीयते पदार्थजातं सदसद्विवेकवत् ।
विनीतवत्से तव सैव सुन्दरी शिवास्ति विद्या नवकण्ठभूषणम् ३

जिस के द्वारा भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालों की सब बातें सत् और असत् का बोधन कराती हुई पदार्थ मात्र को बता रही हों वह विद्या ही तेरा नवीन कण्ठ का भूषण है ॥ ३ ॥

विहाय पत्युश्चरणारविन्दयोर्निरीक्षणं सत्रपता जगत्त्रये ।
समस्तलोकेषु धृता सतीमते ममास्ति बाले तव*नेत्रभूषणम् ४

---

* १—(क) मृषा वदति लोकोयं ताम्बूलं मुखभूषणम् ।
मुखस्य भूषणं त्वेकं स्यादमुत्र सरस्वती ॥ १ ॥ (कश्चित्)
(ख) क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।
(ग) वशीकरणमन्त्रोयं यज्जने मृदु भाषणम् ॥ (भर्तृहरिः)

प्राणनाथ के चरणारविन्दों के अन्यत्र जगन्मात्र में समस्त पुरुषों के लिये सादर लज्जादेवी का धारण करना ही मेरी अनुमति में सर्वोत्तम तेरा नेत्र भूषण है, और उपचार मात्र हैं ॥ ४ ॥

अध:कृताशेषमघोर्यथायथं प्रियस्य वाच: श्रवणात्परत्र ते।
श्रव: श्रुतीनामथवा महात्मनां प्रशस्तवाचां मृदु कर्णभूषणम्

प्राणप्रिय के मधुर भाषण के अन्यत्र संसारमात्र में वेदामृतपानामर महात्माओं का शिक्षाप्रद उपदेश अथवा ईश्वरोक्त चार वेदों की श्रुतियों का श्रवण करना तेरा कर्णभूषण है ॥ ५ ॥

प्रतिक्षणं सादरमग्रत: स्थिते शरीरनाथे नियतन्नवस्त्रजम् ।
यथा तथा यन्नमनं सवन्दनं तदेव वत्से शिरसो विभूषणम् ॥६॥

प्रसङ्ग से सामने आये हुवे पति के लिये प्रतिक्षण करती हुई नूतन मालाओं के साथ जो सहस्तवन्दन नयन है, वही तेरे लिये सर्वोत्कृष्ट शिरोभूषण होना चाहिये ॥ ६ ॥

न शोकमोहौ न भयं न शङ्कनं स्वभावतो यत्परिधानत: फलम् ।
प्रतीयते तत्परिधेहि बालिके सुधैर्यमेकं हृदयस्य भूषणम् ॥७॥

जिस के धारण करने से न शोक दुःखित कर सकता हो, न मोह मोहित कर सकता हो, न भयभीत कर सकता हो, न किसी प्रकार की शङ्का ही हो, वह धैर्य ही हृदय का भूषण पहिन ॥ ७ ॥

पतिप्रसादोद्धतकार्यसिद्धिमत्प्रधानकार्यानुगतं यथोचितम् ।
यदत्र दानं मधुरप्रलापने तदेव मन्ये तव हस्तभूषणम् ॥ ८ ॥

जिस कार्य में पति की भी अनुमति हो उस के सिद्ध्यर्थ तथा तदनुकूल अन्य कार्य के लिये भी जो यथाविभव दान करना है यही तेरा सर्वोत्तम हस्तभूषण होना उचित है ॥ ८ ॥

विसृज्य पत्यानुमतं निरोधनागतागतानां गृहकर्म सर्वथा ।
तदन्यकार्येऽनुमतं पतिव्रते ममास्ति वत्से तव पादभूषणम् ॥९॥

जिस गृहकर्म में पति की आज्ञा हो उस से अन्यत्र सर्वथा, सर्वदा गमन तथा आगमन का जो निरोध करना है वही मेरी अनुमति में लोकमान्य चरणभूषण मानना चाहिये ॥ ९

अशेषसृष्टेरधिपस्य जीवनप्रदस्य सर्वत्रगतस्य सर्वतः ।
स्थितस्य देवस्य शिवस्य चिन्तनं तवास्ति वत्से मनसोविभूषणम्

समस्त सृष्टि के अधिप, पञ्चभूतों द्वारा जीवन के देने वाले, समस्त पदार्थों के अन्तर्गत सर्वत्र विद्यमान कल्याणकारक परमेश्वर का जो चिन्तन है वही मन का भूषण उचित है ॥ १० ॥

विधिप्रदिष्टाखिलशर्मयत्कृतावलभ्यमप्येति जनः प्रसादकृत् ।
स सर्वलोकानुमतोवशंवदे परोपकारः सकलस्य भूषणम् ॥११॥

जिस के करने से अलभ्य भी विधिप्रदिष्ट समस्त कृत्यों द्वारा उत्पन्न सुख मनुष्यमात्र (क्या स्त्री क्या पुरुष) के लिये प्राप्त होता है वह सर्वानुमत परोपकार सर्वाङ्गभूषण है ॥ ११ ॥

एभिर्विभूषणवरैः परिमण्डयस्व
वत्से नवं स्वकरणं परितः प्रसादात् ।
सर्वेऽपि यस्य मुदिताः परिवीक्षणेन
लोके भवेदुरुभयत्र च मङ्गलं स्यात् ॥ १२ ॥

हे पुत्रि ! इन भूषणों से अपने शरीर को तू अलङ्कृत कर । जिन के प्रभाव से सब मुदित हों और उभयत्र कल्याण हो तथा जिन में चोर का, घिसने का, टूटने का, बोझे का डर भी न हो ॥ १२ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
वास्तविकसद्भूषणवर्णनं
नाम नवमः सर्गः

॥९॥

दशमः सर्गः

विवाहानन्तरं गत्वा पतिगेहं वधूजनैः ।
पतिरेव समस्ताभिः क्रियाभिः परितोष्यताम् ॥ १ ॥
स एव दैवतं तासां स एव परमेश्वरः ।
स एव सर्वकार्येषु नियन्तानुमतिप्रदः ॥ २ ॥
रुष्टे रुष्टतया स्थेयं प्रसन्ने सुप्रसन्नया ।
तदाराधनकृत्येषु वयः सर्वं निवेश्यताम् ॥ ३ ॥
न कार्यमण्वपि गृहे कर्तव्यं गृहिणीजनैः ।
ऋते नायकनिर्देशं धर्मएष व्यवस्थितः ॥ ४ ॥
पत्यापि तेषु तेष्वेषा बोधनीया नवा वधूः ।
कृत्येषु नवभावत्वाद्येषु नेयं स्थिरा भवेत् ॥ ५ ॥

विवाह के अनन्तर पति के गृह में जाकर समस्त क्रियाओं से पति ही स्थिरतया स्त्रियों को तुष्ट करना चाहिये । वही उन के लिये दैवत, वही परमेश्वर, वही सर्वकार्यों में अनुमति देने वाला और नियन्ता मानना चाहिये। उस के रुष्ट होने पर रुष्ट, तथा प्रसन्न होने पर प्रसन्न रहना चाहिये । समस्त अवस्था उसी की सेवा में लगानी चाहिये । विना उस की आज्ञा के कोई छोटा भी काम गृह में नहीं करना चाहिये, यह धर्मशास्त्र की मर्यादा है । जिन कार्यों को नवीन होने से स्त्री न जाने उन को चाहिये कि पति स्वयं बताकर उसे स्थिर करे ॥ ५ ॥

गृहस्थाश्रमकृत्येषु समालोचनतत्परौ ।
वधूवरौ यत्र तत्र समस्तमपि मङ्गलम् ॥ ६ ॥
एकस्यापि तयोर्मध्ये न यत्र भवने रुचिः ।
न तद्गृहं समस्ताभिर्विभूतिभिरुपास्यते ॥ ७ ॥
पतिशुश्रूषया पत्नी सर्वभावेषु गौरवम् ।
स्वयमेव समायाति धर्ममार्गानुवर्तनात् ॥ ८ ॥

यथा वंशमुपागत्य वर्धते नववल्लरी ।
तथा पतिमुपागत्य वर्धते बहु मानिनी ॥ ९ ॥
गर्भाधानात्परं साध्वी विहारगमनादिषु ।
सावधानतया तिष्ठेत्पुत्रकल्याणवृद्धये ॥ १० ॥
यादृगासेवते वस्तु मानिनी गर्भभर्मणि ।
तादृशो जायते वत्सस्तद्रुचिस्तादृगाकृतिः ॥ ११ ॥

जिस गृह में दोनों स्त्री पुरुष सावधानता से कार्यों को देखते हैं वहां पर समस्त मङ्गल होते रहते हैं, जिस गृह में उन दोनों में से एक भी सहमत न होगा उस में कदापि संपत्तियां जाकर न रहेंगी । पति के सेवन से पत्नी स्वयं समस्त कार्यों में गौरव को प्राप्त हो जाती है । जिस प्रकार वंश को प्राप्त होकर बेल बढ़ती है उसी प्रकार पति को प्राप्त हो स्त्री बढ़ती है । गर्भाधान के अनन्तर स्त्री को चाहिये कि गमन भोजन आदि समस्त कार्यों में पुत्र के कल्याणार्थ बहुत सावधानी रक्खे । जैसा पदार्थ गर्भधारण के समय माता व्यवहार में लाती है, उसी आकृति का, उसी रुचि का, वैसा ही पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ९-११ ॥

जातान्पुत्रान्विधानेन शास्त्रदृष्टेन सत्वरम् ।
योजयेद्बालभावेपि धर्मशास्त्रानुवर्त्तनात् ॥ १२ ॥
जातकर्मादिसंस्काराः समये समये कृताः ।
समीचीनानि ददते फलानि गुणकर्मसु ॥ १३ ॥
अतस्ते नियते काले कर्त्तव्याः सर्वपूरुषैः ।
सर्वथा प्रभवेद्येन पुत्राणामुन्नतिः सदा ॥ १४ ॥
एवं कृते समस्तापि संपत्तिः सर्वगेहिनाम् ।
स्वयमेव समायाति भवनेषु स्पृहावती ॥ १५ ॥
समागतायां संपत्तौ स्वयमेव ततः परम् ।
चतुर्वर्गफलावाप्तिर्भवत्यभिमता नृणाम् ॥ १६ ॥

उत्पन्न हुए पुत्रों को बाल्यावस्था में भी माता शास्त्रविधान से उत्तम शिक्षा दे । समय २ पर किये हुए जातकर्म आदि संस्कार पुत्रों के भविष्य

में अच्छा फल देते हैं, इस लिये वह सब को नियत समय पर करने चाहियें ताकि पुत्रों की सर्वदा उन्नति होती रहे। इस प्रकार करने पर स्वयं ही गृहस्थों के गृहों में सम्पत्ति आती है, उस के आने पर अभीष्ट चतुर्वर्ग फल प्राप्ति पुरुषों के लिये स्वयं हुआ करती है॥ १२-१६॥

गृहस्थाश्रमएवायं प्रभवः सर्वदेहिनाम्।
स च योषामनुगतस्तस्मात्सैव गृहं परम्॥ १७॥
सा भवेद्यदि धर्मज्ञा सर्वं सुखकरं सदा।
भिन्नवृत्ता यदि सदा धर्मनाशः सुखावहः॥ १८॥
अतः सैव प्रयत्नेन साधानीया द्विजोत्तमैः।
साधितायां गुणैस्तस्यां सिद्धमेव समीहितम्॥ १९॥
मयापि नवशिक्षायै तासामेव विनिर्मितम्।
भामिनीभूषणं काव्यं वास्तवे भूषणं परम्॥ २०॥
एतदालोकनात्सर्वा विदुष्योविनयान्वताः।
प्रभवन्तु यतः श्रेयो भारते पुनराव्रजेत्॥ २१॥

गृहस्थाश्रम ही समस्त पुरुषों का एक उत्पत्तिस्थान है, वह स्त्री के अधीन है। इस लिये मुख्यतया स्त्री ही गृह मानना चाहिये, यदि वह धार्मिक हो तब सब सुख है ही, यदि अधार्मिक हो तो धर्मनाश भी अकस्मात ही बना धरा है, इस लिये उसी का बनाना सब का बनाना है, उस के बन जाने पर स्वयं अभीष्ट सिद्ध होगा। मैंने भी वास्तव में भूषण यह भामिनीभूषण काव्य उन्हीं को शिक्षा के लिये बनाया है। इस के अवलोकन से सब स्त्रियां धार्मिक विदुषी एवं विनीत बनें, जिस से इस भारत में गया हुआ कल्याण इस में फिर आकर पूर्ण हो॥ १७-२१॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
व्यावहारिक शिक्षाविवेचनं
नाम दशमः सर्गः समाप्तः
॥ १०॥

एकादशः सर्गः

प्रतिदिनमधिगत्यसद्मपत्युः कथमितिवृत्तमुपासनीयमेतत् :
कथयतिकविरेव सर्गमध्ये समयविभागवशेन सर्वमस्मिन् ॥१॥
प्रतिदिनमुदयाद्रवेर्विसृज्य स्वकशयनं पुरतस्तु शौचकृत्यम् ।
सकलमपि विधेयमेतदन्ते गृहपरिमार्जनपात्रशोधनादि ॥२॥

प्राणेश्वर के गृह में जाकर स्त्रियों को किस प्रकार प्रतिदिन काम करना चाहिये, इस समस्त विषय को इस सर्ग में कविरत्न समयविभागपूर्वक बतलाते हैं—सूर्योदय से पहिले रात्रि के चौथे प्रहर में उठ कर सब से प्रथम शौच वा दन्तधावन कर गृहमार्जन एवं पात्रशोधनादि कार्य करना चाहिये ॥ १-२॥

द्विनिनदमितकालमध्य एतत्
सकलमुपास्य पुनस्तु गात्रशुद्धिम् ।
शुचिजलनिचयेन साधयित्वा
निजपतिवन्दनमादराद्विधेयम् ॥ ३ ॥
विधुमितनिनदान्तरे विधाय
प्रति कथितं पुरतोमया समस्तम् ।
निजमतिविभवेन शास्त्रचर्चा
त्रिनिनदसंमितकालमत्र कार्या ॥ ४ ॥

दोघण्टे के अन्दर २ इतना काम करके पवित्र जल से आप शुद्ध होकर प्राणेश्वर के लिये नम्रतापूर्वक बद्धहस्त से मधुर वाणी पूर्वक [नमस्ते] करना चाहिये। एक घण्टे के अन्दर इतना काम करके अनन्तर निज मत्यनुसार तीन घण्टे तक शास्त्रचर्चा करनी चाहिये । रात्रि के तीन बजे उठ कर नौ बजे तक इतना काम करना ॥ ३-४ ॥

अवसितिमधिगत्य तत्र कृत्ये
समुचितभोजननिर्मितौ प्रयासः ।

पतिरुचिमनुसृत्य कारणीय-
स्त्रिनिनदकालविरामतः पुरस्तात् ॥ ५ ॥
बहुमतिनिनदैकमादराद्वै-
र्निजनिजमेत्य गृहे सखीसमाजम् ।
निजमतिमनुसृत्य कार्यजातं
प्रतिपदलाभविधायकं विचिन्त्यम् ॥ ६ ॥

शास्त्रचर्चा के अनन्तर पति की आज्ञानुसार इस प्रकार भोजन बनाना चाहिये जिस प्रकार दश बजे तक भोजनादि से निवृत्त हो सब काम बारह बजे तक समाप्त हो जावे । उस के अनन्तर निज सखीसमाज में एक घण्टे तक जो २ अपने गृह का मुख्य कार्य हो निजमत्यनुसार सोचना चाहिये जो प्रतिक्षण लाभदायक हो ॥ ५-६ ॥

इति परिचयतः सखीजनानां
परतरमेत्य निनादयुग्ममात्रम् ।
निजरुचिपथमेत्य शिल्पविद्या
कृतिरपि नित्यविधान एव वेद्या ॥ ७ ॥
दिनमणिगमनात्मकेऽपि काले
निजविभवोचितभोजनादि कृत्यम् ।
त्रिनिनदमित एव दिष्टमध्ये
गुणवति साधयितव्यमेव सर्वम् ॥ ८ ॥
परतरमधिगत्य नैजपुत्री-
सुतशुभशिक्षणवीक्षणे च नित्यम् ।
द्विनिनदमितकाल एव कार्ये
किमधिकमत्र मया निबोध्यमन्यत् ॥ ९ ॥

अनन्तर दो घण्टे तक शिल्प सम्बन्धी सीवनादि कार्य करना चाहिये (इस प्रकार बारह घण्टे का काम बतलाया गया) सायंकाल के समय भी

तीन घण्टे के अन्दर २ पतिरुच्यनुकूल भोजनादि का सम्पादन तथा भोजन भी करा देना उचित होगा। भोजनोत्तर दो घण्टे तक पुत्री और पुत्रों का जो प्रतिदिन पढ़ा हो जांच करनी चाहिये और धार्मिक शिक्षा देनी चाहिये जिस से वह गुरुकुल जाने योग्य बनें ॥ ७-९ ॥

भृतिजनकृतिवीक्षणं तदन्ते
गृहगतवस्तुनिरीक्षणं च नित्यम् ।
अपचयनिचयोपभाववीक्षा
निनद्युगेन यथायथं विधेया ॥ १० ॥
परतरमुपवीक्ष्य सर्वकार्यं
निजशुचिमत्यनुसारतो यथावत् ।
निजपतिसविधे विधेयमारा-
च्छयनमपि क्षणदावशिष्टकाले ॥ ११ ॥
इति पतिगृहमेत्य कालजातं
सकलमपि स्वगृहानुगे सुकृत्ये ।
धृतिमति नितरां विनेयमस्मा-
द्भवति न कोपि विपर्ययो गृहेषु ॥ १२ ॥

अनन्तर अपने सेवकों का किया हुआ कार्य, गृहगत पदार्थों का दर्शन तथा आय व्यय का हिसाब दो घण्टे यानी दस बजे तक देखना चाहिये। इस प्रकार सब समय अपने कार्य में लगाना चाहिये जिस से किसी प्रकार का बखेड़ा न हो॥ १०-११-१२ ॥

मम कृतिमधिगत्य याःस्वकृत्यं प्रतिदिनमात्मवशैर्विचारयेयुः।
कथमपि भवसागरेतिदुःखे क्षणमपि नायकसङ्गमं त्यजेयुः १३

प्रतिज्ञा

किमधिकमधुनावदामि वध्वःसुतधनगौरवनायकादिसौख्यम्।
प्रतिदिनमधिकं यशश्च लोके भवतुरसाद्भवतीषुवृद्धिमाप्तम्॥१४॥

१ आशीः

मेरे बनाये इस काव्य के अनुसार जो स्त्रियां संसार में कर्म करेंगी वे कदापि प्राणप्रिय से वियुक्त न होंगी। हे बधूजनो! इस से अधिक मैं क्या कहूं। तुम्हारे लिये इस संसार में प्रतिदिन पुत्र, धन, गौरव, पतिसुख और कीर्त्ति आदि समस्त सुखसाधन, सर्वथा, सर्वदा, सर्वत्र प्राप्त हो ॥ १४ ॥

* बालानां रत्नहारः श्रवणसुखकृते योषितां कर्णपूर-
स्तारुण्ये सङ्गतानां रुचिरतरविभः शैशवादुन्नतानाम् ।
कन्यानां कङ्कणाभः करकमलकृते भूषणं भामिनीनां
सर्वासामेव नित्यं हृदि सुविलसताद्भामिनीभूषणाख्यम् ॥१५॥

मुग्धाओं के लिये यह काव्य मनोहर, हार तुल्य, युवतियों के लिये कर्णपूर तुल्य, कन्याओं के लिये कङ्कण तुल्य हो अर्थात् जिस प्रकार हृदय में हार, कर्ण में कर्णपूर, कर में कङ्कण रहता है, इसी प्रकार हृदय कर्ण करों में यह ग्रन्थ बना रहे ॥ १५ ॥

माता यस्य समस्तलोकमहिता मान्या सुबुद्धिःसती
शान्तिर्यस्य सहोदरी सुभगिनी भ्राता सुबोधाभिधः ।
टीकारामसुतेन तेन ललनोद्धाराय कारुण्यतः
सौमत्यं प्रगतेन यन्निगदितं तेनेश्वरस्तुष्यतात् ॥ १६ ॥

समस्त लोक में अद्वितीय [सुबुद्धि] नामक जिस की माता तथा [शान्ति] सहोदरी भगिनी एवं [सुबोध] अनुज है उस कलिकालमहर्षि सनाढ्यकुलभूषण श्री १०८ टीकाराम जी के आत्मज कविरत्न अखिलानन्द ने स्त्रियों के उद्धारार्थ जो यह काव्य बनाया उस से परमेश्वर तुष्ट हो ॥ १६ ॥

वेदर्तुनन्दशशियोजनतःप्रलब्धे
श्रीविक्रमार्कनृपतेःसमये मयेदम् ।

१ अन्ते काव्यस्यनित्यत्वात्कुर्यादाशिषमुत्तमामिति भरतः ॥

* अयं ग्रन्थो भवत्विति शेषः ॥

काव्यं विनिर्मितमिति स्वमनःसु सर्वे
जानन्तु मे हृदिगतं प्रथयन्तु भद्रम् ॥ १७ ॥

वेद ४ ऋतु ६ नन्द ९ शशि १ इन अङ्कों के उलटे जोड़ने से जो विक्रमादित्य का संवत् (१९६४) बनता है, उस में मार्गशीर्ष कृष्णचतुर्दशी को यह काव्य मैने बनाया । इस बात को सब जानें और मेरे अभीष्ट कल्याण को विस्तृत करें ॥ १७ ॥

इति श्रीमदखिलानन्दशर्मकृतौ
सतिलके भामिनीभूषणकाव्ये
नित्यकार्यनिबोधनं
नामैकादशः सर्गः समाप्तः ॥ ११ ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः

छन्दःसूत्र

हलायुधादि की वृत्तियों में कामी पुरुषों के मोदजनक लज्जायुक्त उदाहरण हैं, जिन से वे वृत्तियां बाल्यावस्था से ब्रह्मचर्याश्रम धारण कर युवावस्था को प्राप्त होने वाले विद्यार्थियों को विषयलम्पट बनाने वाली होने से उन का पढ़ाना भले आदमियों को इष्ट नहीं। मूलमात्र में छन्दःसूत्र कठिन होने के कारण से पढ़ा पढ़ाया जाना कठिन है। इस लिये श्रीयुत पं० अखिलानन्द जी ने यह एक नवीन संस्कृत टीका बनाई है, जिस में उदाहरणों के लिये नवीन अपने रचे पद्य रक्खे हैं, जिन में पदे पदे ब्रह्मचर्याश्रम, गुरुकुल, वेदधर्म इत्यादि का महत्त्व वर्णन किया है और छन्दों के उदाहरण साथ २ होगये हैं, भाष्य वा टीका का क्रम भी बड़ा सरल, सरस और भाव को भले प्रकार समझाने वाला है। छन्दःसूत्ररूप इस आर्ष पुस्तक पर जो अनार्ष टीकों के कामप्रभावजनक उदाहरणों का दोष लगा हुवा था, जिस से भद्र पुरुषों में इस के पठन पाठन का प्रचार कम होगया था, अब इस टीका ने वह दोष सर्वथा दूर कर दिया है। आशा है कि फ़र्रुख़ाबादादि गुरुकुलों में जहां पिङ्गल की पढ़ाई प्रचरित है, इस टीका का वर्त्ताव किया जायगा तो ब्रह्मचारी छात्रों का बड़ा उपकार होगा। मूल्य घटाया ॥) मात्र है ॥

वर्त्तमान कविरत्न पं० अखिलानन्द शर्मा ने जो अब तक २५ · ३० काव्य बनाये हैं उन में से ५ छप कर तैयार हैं। प्रत्येक में प्रथम संस्कृत श्लोक हैं, फिर उन्हीं की बनाई संस्कृत टीका हैं, फिर भाषा टीका हैं। जिन में से—

(१) श्रीमद्दयानन्दलहरी

इस में गङ्गालहरी के से शिखरिणी छन्द हैं। मूल्य ≡)

(२) आर्यशिरोभूषण काव्य

इस में अन्य छन्द हैं। मूल्य ।)

(३) लघुकाव्यसंग्रह

इस में १—ईश्वरस्तुतिकाव्य, २—धर्मलक्षणवर्णन, ३—सत्याऽष्टकवर्णन, ४—गप्पाऽष्टकवर्णन; ये ४ काव्य एकत्र हैं। मूल्य ≡)

(४) आर्यनियमोदय काव्य

इस में उक्त ३ धाराओं से अधिक आर्यसमाज के १० नियमों के मूलभूत वेदमन्त्रों की चौथी धारा भी है। मूल्य ≈)

(५) वैधव्यविध्वंसनचम्पूः। भा० टी० सह। मूल्य ॥)

पता—मैनेजर स्वामी प्रेस मेरठ